विषय सूची

श्री वीतरागाय नमः

धर्म शिक्षावली

पांचवां भाग

पाठ १

प्रार्थना

हे सर्वज्ञ वीर जिन देवा, चरन शरण हम आते हैं।
ज्ञान अनंत गुणागार तुमको चरणन शीस नवाते हैं ॥ १ ॥
कथन तुम्हारा मन को प्यारा कहीं विरोध नहीं पाता।
अनुभव बोध अधिक जिनके हैं, उन पुरुषों के मन भाता ॥ २ ॥
दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूपी, मारग तुमने दर्शाया।
सही मार्ग हितकारी सब का, पूज्य ऋषि गण ने गाया ॥ ३ ॥
रत्नत्रय को भूल न जावें, इसी लिये अध्ययन करें।
ब्रह्मचर्य का दृढ़तम पालें, सप्त व्यसन का त्याग करें ॥ ४ ॥
नीति मार्ग पर नित्य चलें हम, योग्याहार विहार करें।
पालें योग्याचार सदा हम, धर्माचार विचार करें ॥ ५ ॥
धर्म मार्ग और वैध मार्ग से, देशोद्धार विचार करें।

श्राप वचन दृग ज्ञानमें पागें, मतिमिथ्यात्व प्रगार करें ॥ ६ ॥
धा जिन धर्म बढ़े दिन दूनो, पंच आप्त नुति नित्य करें।
मत्संगति का पारर स्वामिन, कर्म कलंक समूल हरें ॥ ७ ॥
फल भाव यह सभी हमारे, यही निवेदन करते हैं।
"लाल" बाल मिल माल वीर के चरनों में सिर धरते हैं ॥

प्रश्नावलि

१—इस प्राथना म किन को नमस्कार किया गया है ?
२—वीर भगवान के कथन की क्या विशेषता है ?
३—हितकारी मार्ग कौनसा है ?
४—इस कविता में हमारे लिये कानर से हितकारी कर्तव्य सुनाये हैं ?
५—पंच आप्त आप वचन मतिमिथ्यात्व से क्या समझते हो।

पाठ २

क्षमाशूर और तपशूर

गौद्ध धमा महाराजा श्रेणिक एक दिन संध्या समय वन में क्रीड़ा करके आ रहे थे, उन्होंने मार्ग में एक ध्यान में लीन निर्ग्रन्थ जैनमुनि यशोधर महाराज को अचल खड़े हुये

देखा। राजा का धर्म द्वेष भड़क उठा। शीघ्र ही उसने अपने पानसौ शिकारी कुत्ते मुनिराज के ऊपर छोड़ दिये। मुनिराज परम शान्त स्वभावी थे, आत्म ध्यान में लीन होने के कारण उन्हें यह भी जरा विचार न आया कि यह उपसर्ग कौन कर रहा है।

ज्योंही कुत्ते मुनिराज के पास पहुंचे, वे उन की ध्यान मई परम शान्त मुद्रा को देख चुप चाप खड़े हो गये, उन की सब क्रूरता भाग गई। आत्मीक प्रभाव भी खूब होता है, जैसे मंत्र कीलित सर्प शान्त हो जाता वैसे ही वे कुत्ते भी शान्त हो गये, मुनिराज की प्रदक्षिणा दे कर उनके चरणों में बैठ गये।

महाराज श्रेणिक ने जब यह दृश्य देखा तो मारे क्रोध के वह लाल हो गये, मियान से तलवार सूत कर मुनि को मारने के लिये जा ही रहे थे कि एक भयंकर सर्प फण को उठाये हुवे, फुंकार मारते हुवे उनकी नजर पड़ा इसे अशुभ शकुन समझ श्रेणिक ने झट से उस सर्प को मार डाला और बड़े क्रूर परिणामों के साथ उस मरे हुवे सर्प को यशोधर मुनिराज के गले में डाल दिया।

मुनिराज तो ध्यानारूढ थे वीतरागी थे, उन्होंने जब अपने गले में सर्प पड़ा जाना तो उन्होने अपना ध्यान और भी बढ़ा लिया और वैराग्य भावना तथा वैराग्य को बढ़वाने वाली बारह भावनाओं का चिन्तवन करना शुरू कर दिया।

इधर राजा श्रेणिक तीन दिन तक तो इधर उधर अपने काम में लगे रहे, चौथे दिन रात्रि के समय जब जैन धर्म की

कट्टर श्रद्धानी रानी चेलना के महलमें आये तो यह सब कौतूहल रानी से कह सुनाया। यह सुनते ही रानी कांप उठी, उसका हृदय दहल गया अपने गुरु मुनिराज पर घोर उपसर्ग जान अनेक प्रकार शोक करने लगी, उसकी आँखों में टप टप आँसू गिरने लगे। इससे महाराज श्रेणिक का कठोर हृदय भी पसीज गया, कहने लगे "प्रिय तू रंच मात्र भी चिन्ता न कर साधु तो वहाँ से कभी का चलता बना होगा और उसने उस सर्प को भी निकाल कर फेंक दिया होगा"।

श्रेणिक के ऐसे वचन सुन चेलना ने कहा "महाराज ऐसा कहना आपका भ्रम है, यदि वे मेरे पवित्र निग्रन्थ गुरु हैं तो वे उस स्थान से हिले नहीं होंगे और ना ही उन्होंने वह सर्प अपने गले से निकाल कर फेंका होगा। सुमेरु पर्वत भले ही चलायमान हो जावे परन्तु वे धीर वीर तपस्वी साधु उपसर्ग आने पर जरा भी विचलित नहीं होते हैं। हे नाथ क्षमा गुण के धारी जैन मुनि पृथ्वी के समान अचल होते हैं और समुद्र के समान गंभीर, वायु के समान निष्परिग्रह अग्नि के समान कर्म भस्म करने वाले, आकाश के समान निर्लेप, जल के समान निर्मल चित के धारक, एवं मेघ के समान परोपकारी होते हैं। आप विश्वास रखें जो गुरु परम ज्ञानी, परमध्यानी दृढ़ वैरागी होंगे वे ही मेरे गुरु हैं। इन से विपरीत कायर, परिग्रही व्रत तप आदि से शून्य मेरे गुरु नहीं हो सकते। हे नाथ! आपने बड़ा अनर्थ किया जो वृथा ही अपनी आत्मा को दुर्गति का पात्र बनाया।

राजा को यह जान कर बड़ा आश्चर्य हुवा और उसी समय रानी चेलना सहित रात्रि को मुनिराज के पास पहुंचे। देखते हैं कि मुनिराज वैसे ही ध्यानारूढ खड़े हैं जैसे कि चार दिन पहले खड़े थे, गले मे उसी तरह मरा हुआ सर्प पड़ा है, कीड़ियाँ शरीर पर चिमटी हुई हैं। यह देखते ही राजा के हृदय में एक दम भक्ति का समुद्र लहरा उठा। मुनिराज को देखते ही चेलना का शरीर भी रोमाचित हो आया, वह शीघ्र ही उनके पास आई, झट से गले से सर्प निकाल कर फेंक दिया और कीड़ियाँ सब यत्नाचार पूर्वक पोंछ कर साफ कर दीं। मुनिराज के शरीर को गर्म पानी से धोकर उस पर चदन का लेप कर दिया। रात्रि होने के कारण मुनिराज बोले नहीं मौन से रहे। राजा और रानी दोनों आनन्द के साथ उनके सामने भूमि पर बैठ गये। सवेरा होते ही फिर रानी ने मुनिराज के चरणो का भक्ति भाव से पूजन किया, उनकी स्तुति की। फिर राजा और रानी दोनों मुनिराज को नमस्कार करके यथा स्थान बैठ गये।

जब मुनिराज का ध्यान खुला तो उन्होंने दोनों को समान रूप से "धर्म वृद्धि" आशीर्वाद दिया। मुनि महाराज ने अपनी परम भक्त रानी और द्वेषी राजा मे कुछ भी भेद भाव न किया, दोनो को बराबर समझा। उस समय मुनिराज की उत्तम क्षमा को देखकर महाराज श्रेणिक बड़े लज्जित हुवे और अपने मन में बड़ा दुःख करने लगे। मुनिराज के इस शिष्ट बर्ताव से श्रेणिक मन ही मन में विचारने लगे हाय ! मैं बड़ा पापी हूँ, मैंने ऐसे

घोर तपस्वी योगीश्वर के, मारने का प्रयत्न किया, धिक्कार है मेरे जीवन का। मुनिराज अन्तरयामी थे, ज्ञान से उन्होंने राजा के मन की बात जान ली। कहने लगे "राजन तुम्हें अपने चित्त में किसी प्रकार का दुःख नहीं मानना चाहिये। जो शुभ अशुभ कर्म किया है उसका अच्छा बुरा फल अवश्यमेव भोगना पड़ता है।"

मुनिराज के शान्ति मय और हितकारी वचनों को सुनकर महाराज श्रेणिक को बड़ा आश्चर्य हुआ। इसी प्रकार अनेक प्रकार धर्म चर्चा राजा श्रेणिक ने मुनिराज से की। राजा के विचारों ने पलटा खाया, उनके विचार की सीमा बढ़ गई, उन्होंने सोचा कितने ही, विषय लम्पटी कामी, क्रोधी अविचारी तथा ज्ञान ध्यान से शून्य दभी साधु कभी सच्चे श्रमण अर्थात गुरु नहीं हो सकते। इस प्रकार विचार करते उनकी श्रद्धा जैन धर्म में पूर्ण रूप से हो गई। रानी चेलना सहित महाराज श्रेणिक ने मुनिराज को नमस्कार किया उनकी बारबार स्तुति करते हुवे राजा और रानी बड़े आनन्द के साथ राज महल की ओर चल दिये।

सम्राट श्रेणिक इस प्रकार महारानी चेलना सहित जैन धर्म को पालते हुवे आनन्द पूर्वक अपने राज्य की सुव्यवस्था करते हुवे राज ग्रह नगर में बड़े ठाठ बाठ के साथ रहने लगे।

धन्य है यशोधर मुनिराज की इस उत्कृष्ट उत्तम क्षमा तथा त्याग और सहन शीलता को, वास्तव में वह सच्चे साधु थे, वे यथार्थ क्षमाशूर तपशूर थे जैसे कि जैन साधु हुवा करते हैं।

प्रश्नावलि

(१) राजा श्रेणिक ने श्री यशोधर मुनिराज पर शिकारी कुत्ते क्यों छोड़े ?

(२) उन कुत्तों ने मुनिराज को कोई हानि पहुंचाई या नहीं—यदि नहीं तो क्यों नहीं ?

(३) राजा श्रेणिक ने मुनिराज के गले में सर्प क्यो डाला ? क्यामुनिराजने उस सर्प को अपने हाथ से निकाल फेंका ? यदि नहीं तो किसने और कब दूर किया।

(४) ध्यान खुलने के बाद मुनिराज ने राजा श्रेणिक को क्यों पहले आशीर्वाद दिया ?

(५) आशीर्वाद देने के बाद राजा श्रेणिक के क्या परिणाम हुवे और मुनिराज ने उसको कैसे संबोधा ?

(६) निर्ग्रन्थ गुरू के कुछ विशेष लक्षण अपनी परिभाषा में समझाओ ?

(७) उत्तम क्षमा से आप क्या समझते हैं दृष्टान्त देकर बताओ।

(८) मुनिराज के आत्मबल का क्या प्रभाव श्रेणिक पर पड़ा और श्रेणिक मे क्या परिवर्तन हुवा ?

पाठ ३

चतुर्गति के दुःख और उनका कारण

तीन लोक में जितने अनन्त जीव हैं सब ही दुःख से डरते हैं और सुख चाहते हैं। अनादि काल से यह ससारी जीव मोह रूपी मदिरा को पीकर बहोश हो रहा है और अपने शुद्ध चिदानन्द रूप निज स्वरूप को भूल हुवे, चतुर्गति रूप ससार में वृथा भ्रमण करता फिरता है। इस जीव का अनन्त समय तो निगोद में ही एकेन्द्रिय शरीर धारण किये हुवे ही चला जाता है। निगोद में बड़ी वेदना सहन करनी पड़ती है। वहाँ की वेदना का अनुभव इसी बात से कर लिया जावे कि एक श्वाँस मात्र में वहाँ अठारह बार जन्म मरण होता है।

निगोद से निकलने पर यह जीव पृथ्वी काय जल काय, अग्नि काय, वायु काय और वनस्पति काय इन पाँच स्थावर पर्यायों को धारण करता है। एकेन्द्रिय जीवों के अकथनीय कष्ट हैं—जरा उन पर गौर कीजिये। मिट्टी को खोदते हैं, रौंदते हैं जलाते हैं, कूटते हैं, उस पर अग्नि जलाते हैं, धूप की ताप से पृथ्वी कायिक जीव मर जाते हैं। एक चने के दाने बराबर सचित्त मिट्टी में अन गिनती पृथ्वीकायिक जीव होते हैं—कूटने पीटने रौंदने आदि से इन सब को महान कष्ट होता है, पराधीनपने से सब सहने पड़ते हैं, बचाव वे कर नहीं सकते, कहीं भाग नहीं सकते असमर्थ हैं। सचित जल को गर्म करने, मसलने, रौंदने

आदि से महान कष्ट जल कायिक जीवों को उसी तरह होता है जैसे पृथ्वी कायिक जीवों को। जल कायिक जीव का शरीर भी बहुत छोटा होता है पानी की एक बूँद में अनगिनत जल कायिक जीव होते हैं। वायु कायिक जीव शीतादि की टक्करों से गर्मी के झोंकों से, जल की तीव्र वृष्टि से, पंखों से, हमारे दौड़ने कूदने से टकरा कर बड़े कष्ट से मरते हैं इनका शरीर भी बहुत सूक्ष्म होता है, एक हवा के झोंके में अनगिनत वायुकायिक जीव होते हैं।

जलती हुई अग्नि पर पानी डाल कर बुझाने से मिट्टी डाल कर बुझाने से, तथा लाल तपते हुवे लोहे को घन से पीटते हुवे अग्नि कायिक जीवों को स्पर्श का बहुत बड़ा दुःख होता है। इन का शरीर भी बहुत छोटा होता है। एक अग्नि की उठती हुई लौ में अनगिनत अग्नि कायिक जीव होते हैं।

वनस्पति दो प्रकार की होती हैं, एक साधारण और दूसरी प्रत्येक। जिस वनस्पति का शरीर एक हो व उसके स्वामी बहुत से जीव हों जो साथ २ जन्मे व साथ २ मरे उनको साधारण वनस्पति कहते हैं। जिसका स्वामी एक ही जीव हो उसे प्रत्येक कहते हैं। बहुधा आलू, मूली, गाजर आदि जमीकन्द भूमि में फलने वाली तरकारियां साधारण होती हैं। अपनी मर्यादा को प्राप्त पकी ककड़ी, नारंगी, पका आम, अनार, सेव, अमरूद आदि प्रत्येक वनस्पति है। इस वनस्पति कायिक जीवों को बड़ा कष्ट होता है। कोई वृक्षों को काटता है, छालता है, पत्तों को

तोड़ता है नोचता है। फलो का काटता है साग को छौंकता है, पकाता है। घास को कतरता है पशुओ द्वारा या मनुष्यों द्वारा बड़ी निर्दयता के साथ इन वनस्पति काय के जावो को घोर कष्ट दिया जाता है। ये पराधीन हुवे व असमर्थ होने के कारण अनेक वेदनाओं को सहते हैं। और कष्ट से मरते हैं। ये सब इन के बांध हुवे पाप कर्मों का फल है।

दो इन्द्रिय प्राणियों से चौन्द्रिय प्राणियों को विकलत्रय कहते हैं। कीड़े, मकोड़े, पतगे, चींटी चींट आदि पशुओ और मनुष्यो द्वारा तथा हवा पानी अग्नि आदि द्वारा घोर कष्ट पा कर मरते हैं। बड़े सबल जन्तु छोटो का शिकार कर अपना खाना बनाते हैं। कितने ही भूख प्यास मे, पानी की वर्षा से, आग जलने से, दीपक की लौ से, नहाने धोने आदि के पानी से, बुहारने से, फटकारने से, कपडों से धाव पोंछने पर तड़प तडप कर मरते हैं। कितने ही गाड़ी, मोटर, रेल आदि द्वारा रौंद जाने पर मर जाते हैं। भिड मक्खियो के छत्तो को आग से जला कर भस्म कर दिया जाता है। मच्छरों को मारने के लिये प्रति नये २ ढग निकाले जाते हैं और उनके द्वारा उन को मार दिया जाता है, कितने ही जीव जतु मनुष्यों द्वारा उन के अपने दैनिक व्यवहार के निमित्त मार दिये जाते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंचो के दुख नित प्रति आप अपनी आखो से देखते ही हैं। पशु पक्षिया का कोई पालक नही उन को पेट भर कर भोजन पान नहीं मिलता—भूख प्यास गर्मी सर्दी की कितनी ही बाधायें उन्हें सहन करनी पडती

हैं। शिकारी लोग निर्दयता पूर्वक गोली या तीर से उन को मार डालते हैं। मांसाहारी पका कर खाते हैं, धर्म के नाम पर कितने ही पशुओं को बलि के नाम से होम कर दिया जाता है। बकरों मेढों, मुर्गों आदि की कुरबानी की जाती है, मर्यादा से बाहर बोझा पशुओं पर लादा जाता है, जख्मी बैलों, घोड़ों, खच्चरों गधों को मार मार कर चलाया जाता है। यथा समय उन का चारा पानी भी नहीं दिया जाता। गर्मी सर्दी की बाधा उनको अनेक तरह से सहन करनी पड़ती है। कितने ही पक्षियों को तथा पशुओं को पिंजरों में बन्द कर दिया जाता और उनकी स्वतन्त्रता का नष्ट कर दिया जाता है। मछलियों को जल में से निकाल २ कर जमीन पर पटक दिया जाता है जहाँ वह तड़फ २ कर मर जातीं हैं मनुष्य अपनी खूराक के लिये, अपनी स्वादों के लिये, अपनी सजावट के लिये और अपने भोग विलास के लिये कितने ही पशु पक्षियों का निर्दयता पूर्वक नित्य प्रति विध्वंस कर डालता है। इस प्रकार पचेन्द्रिय तिर्यचों को असहनीय दुःख सहन पड़ते हैं। नरक गति में नारकी जीवों को बहुत दिनों तक घोर दुःख भोगने पड़ते हैं। निरंतर परस्पर एक दूसरे से लड़ते रहते हैं उनकी भूख प्यास की बाधा कभी मिटती ही नहीं—भूख इतनी कड़ी होती है कि तीन लोक के अनाज खा लेने पर भी वह तृप्त नहीं होती—प्यास इतनी होती है कि सारे समुद्रों के जल से भी शान्त नहीं हो पाती—नरकों की भूमि कर्कश और दुर्गंध मय होती है हवा छेदक और असह्य होती है। अधिक गर्मी और अधिक शीत की

घोर वेदना यहा सहन करनी पडती है नारकियों का शरीर बहुत ही कुरूप और डरावना होता है। उसके देखने मात्र से ग्लानि हो जाती है। नारकियों का शरीर वैक्रियक होता है जो छेदे जाने पर तथा भेदे जाने पर भी पारे की तरह फिर से मिल जाता है। आयु पूरी हुये बिना वे नरक से छूट नहीं सकते। नारकी पचेंद्रिय सनी नपुसक होते है, उनके पाचो इन्द्रिया के भोगों की तृष्णा होती है, परन्तु उस तृष्णा की शान्ति के उपाय तथा साधन न होने से वे निरन्तर क्षोभित और सतापित रहते हैं। उनके परिणाम बड़े खोटे होते हैं। इस प्रकार नाना भाँति के कष्ट नरक गति म इस जीव को सहने पडते हैं।

मनुष्य गति मे दु ख तो प्रगट ही हैं। माता के गर्भ मे नौ महीने रहना पडता है, जहाँ घोर वेदनायें सहता है, जन्म के समय में जो घोर कष्ट होता है वह कहने मे नहीं आ सकता। शिशु अवस्था में असमर्थ होने के कारण खान पान यथा समय न मिलने पर बार २ रोना पडता है, अज्ञान दशा होती है, अज्ञान के निमित्त थोड़ा सा भी दु ख बहुत ज्यादा मालूम पडता है, किसी के माता पिता मर जाते हैं तो दु ख, किसी के सन्तान नहीं होती है तो दु ख, सतान होकर मर जाती है तो दु ख, सतान जीवित रहती है और खोटी हो जाती है तो दु ख किसी को रोग सताता है, कोई स्त्री के वियोग में तडपता, कोई दरिद्र से दु खी है। किसी को इष्ट वियोग का दु ख है तो कोई अनिष्ट सयोग के मारे बिलखता है। किसी को शारीरिक पीड़ा

है तो किसी को मानसिक चिन्ता सताती है। मनुष्य गति में बड़ा दु:ख तृष्णा का है। पाँचों इन्द्रियों के विषय भोगों की तृष्णा सताती रहती है। ईच्छित पदार्थ यदि नहीं मिलते हैं तो बड़ा कष्ट होता है। "दाम बिना निर्धन दु:खी तृष्णा वश धनवान" चाह की दाह में बड़े २ चक्रवर्ती भी जला करते हैं। बुढ़ापे में शरीर शिथिल हो जाता है, इन्द्रियाँ काम नहीं करतीं लोलुपता बढ़ जाती है, पराधीन हो जाता है-वृद्ध अवस्था अर्द्ध मृतक समान है। इस प्रकार मनुष्य गति में इस जीव को बड़े घोर दु:ख सहन करने पड़ते हैं।

देव गति में यद्यपि शारीरिक कष्ट नहीं है, परन्तु मानसिक कष्ट बहुत भारी है। देवों में छोटी बड़ी पदवियाँ होती हैं देवों की विभूति सपदा कम ज्यादह होती है। नीची पदवी वाले देव ऊँचों को देख कर मन में बड़ा ईर्षा भाव करते हैं, उन को देख कर जला करते हैं। जब किसी देवी का मरण हो जाता है तब इष्ट वियोग का दु:ख होता है, जब किसी देव का अपना मरण काल आता है तो वियोग का बड़ा दु:ख होता है। अधिक भोग भोगते हुये भी उनकी तृष्णा बढ़ती ही रहती है कभी अकाम निर्जरा के कारण भवन त्रिक।

(भवन वासी देव, ज्योतिषि देव, व्यंतर देव) तीन प्रकार के देवों में भी जन्म ले लेता है तो वहां विषय चाह की अग्नि में जला करता है और यदि कल्प वासी देव भी हो जाता है

तो वहां भी सम्यक् दर्शन बिना दु ख पाता है। वहां से चल
फिर स्थावर अर्थात् एकेन्द्रिय हो जाता है।

इस प्रकार इस ससारी जीव ने पांचों प्रकार के परिव
(द्रव्य परिवर्तन, क्षेत्र परिवर्तन, काल परिवर्तन, भव परिव
और भाव परिवर्तन) अनन्त बार किये हैं। इस सब भ
भ्रमण का मूल कारण मिथ्या दर्शन है।

प्रश्नावलि

(१) चारों गतियों के नाम बताओ ?
(२) जीव को निगोद में कैसी वेदना होती है ?
(३) निगोद से निकल कर यह जीव किस पर्याय में जाता है
(४) पृथ्वीकाय जलकाय, अग्निकाय और पवनकाय के जी
के दु ख का वर्णन करो।
(५) वनस्पति कितने प्रकार की होती है ? प्रत्येक वनस्पति कि
कहते हैं और साधारण वनस्पति किसे कहते हैं
बताओ ?
(६) वनस्पति काय के जीवों के दु खों का वर्णन करो ?
(७) विकल त्रय किन्हें कहते हैं ?
(८) तिर्यंच गति के दु खों का वर्णन करो ?
(९) नरक गति के दु खों का वर्णन करो ?
(१०) नारकियों का शरीर कैसा होता है ?
(११) मनुष्य गति के दु खों का वर्णन करो ?

(१२) देवगति में जीव को क्या २ दुःख होते हैं ?
(१३) भवन त्रिक से तुम क्या समझते हो ?
(१४) पच परिवर्तन के नाम बताओ ?
(१५) संसार परिभ्रमण का मूल कारण क्या है ?

मिथ्यात्व

संसारी जीव अनादि काल से मिथ्या दर्शन ज्ञान चारित्र के कारण इस चतुर्गति रूप संसार में भ्रमण करता चला आरहा है हरएक गति में इसे नाना प्रकार के दुःख और कष्ट भोगने पड़ते हैं। जन्ममरण के अनेक दुःख सहता है। जीव, अजीव, आश्रव , बंध , सवर , निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वों का इसे यथार्थ श्रद्धान नहीं होता है। इन के स्वरूप का और का और उल्टा श्रद्धान कर लेना ही मिथ्या दर्शन है-आत्मा का स्वरूप जानना देखना है आत्मा जड़रूप नहीं है , वह चैतन्य स्वरूप है। वह पुद्गल आकाश धर्म अधर्म और काल इन पाचों द्रव्यों से सर्वथा भिन्न है , यह पाचों जड़रूप हैं। अज्ञानी जीव आत्मा को ऐसा न मान अपने शरीर को ही आत्मा समझता है । जाति मे, कुल में, शरीर मे ,धन मे, धाम में, नगर मे, कुटुम्ब में अपना आपा माना करता है। वह माना करता है मैं सुखी हूँ मैं दुःखी

हूँ मैं गरीब हूँ मैं राजा हूँ, यह रुपया पैसा मेरा है, यह मेरा घर है, यह मेरी गाय भैंस हैं, यह हाथी घोड़ा मोटर मेरी है, मैं बड़ा हूँ, मैं छोटा हूँ, यह स्त्री मेरी है, यह पुत्र मेरा है, अथवा मैं बलवान हूँ, मैं निर्बल हूँ मैं कुरूप हूँ मैं सुन्दर हूँ मैं मूर्ख हूँ मैं चतुर हूँ, शरीर के नाश होने को अपना मरण और शरीर के जन्म को अपना जन्म माना करता है। राग द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ जो नित्य प्रति अपनी आँखों के सामने दुखने ? जीवों को दुख द हैं उन्हीं का सेवन करते हुवे सुख मानता है। मिथ्या दृष्टि पहले बांधे हुवे शुभ कर्मों के फल भोगने में रुचि और अशुभ कर्मा के भोगने में अरुचि करता है क्योंकि उस आत्म स्वरूप का ज्ञान ही नहीं है। अपने आत्मा के हित करने वाले कारणों ज्ञान और वैराग्य को अपने लिये दुख दायी समझता है।

मिथ्यादृष्टि जीव अपने आत्मा की शक्ति को खोकर अपनी इच्छाओं को नहीं रोकता है और न ही चिंता रहित आनन्द स्वरूप अविनाशी मोक्ष के सुख को ढूंढता है। ऐसी उल्टी श्रद्धा सहित जो कुछ साथ होता है उसी को भ्रम देने वाला ज्ञान या मिथ्याज्ञान समझना चाहिये।

मिथ्या दर्शन और मिथ्याज्ञान के साथ ? पाँचों इंद्रिया के विषय में प्रवृति करना मिथ्याचारित्र है। इस प्रकार मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र जो स्वभाव से ही अनादि काल से जीवों के बने रहते हैं, इनको अग्रहीत मिथ्या कहते हैं।

खोटे गुरु, खोटे देव और खोटे धर्म की सेवा करना मिथ्या दर्शन है।

खोटे गुरु—जो गुरु पाखंडी, वेषधारी, इन्द्रिय विषय लम्पटी, धूर्त हैं, अज्ञानी हैं, परिग्रही हैं, आरंभी हैं, जो अपने को पूज्य धर्मात्मा मान अन्य भोले भाले जीवों को ठगते हैं, उनसे अपनी पूजा कराते हैं, जो हिंसा में प्रवृत्ति कराने वाला उपदेश देते हैं, जो कुकथा करते हैं, रागी, द्वेषी तथा दम्भी हैं, वे कुगुरु हैं। संसार समुद्र में तरने के लिये पत्थर की नाव के समान हैं।

खोटे देव—जो देव रागी-द्वेषी हैं, अल्पज्ञ हैं, जो भूख प्यास, काम क्रोधादि सहित हैं, जो भय सहित हैं, शस्त्रादिक को ग्रहण करते हैं। जिनके द्वेष, चिन्ता, खेदादिक निरंतर बने रहते हैं, जो कामी, रागी होने के कारण निरंतर पराधीन रहते हैं, जो अल्पज्ञ हैं वे सच्चे देव नहीं हैं, खोटे देव हैं। जो मूर्ख लोग ऐसे देवों की सेवा करते हैं, वे संसार समुद्र से पार नहीं हो पाते।

खोटा धर्म—जिन २ क्रियाओं के करने में रागद्वेष पैदा हो, अपने और दूसरों के परिणामों में संक्लेश होवे, जो साक्षात् त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा का कारण होवें, उन सब को खोटा धर्म समझना चाहिये। हिंसामय चरित्र का पालना खोटा धर्म है। जो ऐसे कुधर्म का सेवन करते हैं, दुख पाते हैं।

इस प्रकार ऊपर बताये हुए खोटे गुरु, खोटे देव और खोटे धर्म का श्रद्धान करना गृहीत मिथ्यादर्शन है।

खोटे शास्त्र—जो शास्त्र एकान्त पक्ष से दूषित है, अल्पज्ञ के कहे हुए हैं, रागी, द्वेषी, अभिमानी, लोभी, दंभी, कपटी, विषया संपटियों के रचे हुए हैं वे खोटे शास्त्र हैं। जिन शास्त्रों में पूर्वापर विरोध पाया जाता है, जो वस्तु का यथार्थ स्वरूप न बताकर केवल आडंबर रूप, लोगों के चित्त को खुश करने वाली असत्य विकथाओं का कहने वाला हो, जिसमें प्राणियों की हिंसारूप उपदेश दिया गया है, ऐसे खोटे शास्त्रों का पढ़ना दुख देने वाला मिथ्याज्ञान है। ये ही गृहीत मिथ्याज्ञान है।

अपनी नामवरी, रुपये पैसे के लाभ और अपनी पूजा प्रतिष्ठा की इच्छा रखते हुए अनेक प्रकार से अपने शरीर को तपाना, जीव और शरीर के भेद को न जानकर अन्य अधर्मरूप क्रियाएँ करके शरीर को क्षीण करना तथा इसी प्रकार की और अनेक क्रियायें करना सब गृहीत मिथ्या चारित्र है।

इस प्रकार कुगुरु, कुदेव, कुधर्म को सच्चा मानना मिथ्यादर्शन है। संसार बढ़ानेवाले खोटे शास्त्रों का पढ़ना मिथ्याज्ञान है ज्ञान बिना शरीर का नाश करनेवाले हिंसामयी तप का करना मिथ्याचारित्र है। यह गृहीत मिथ्यात्व का स्वरूप समझना चाहिये।

संसार भ्रमण का मूलकारण मिथ्यात्व है। मिथ्यादृष्टि जीव पापों में फंसा रहता है, आत्म हितसाधन में प्रमादी रहता है तीव्र क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय करता है। मन, वचन, काय को क्षोभित रखता है, संसार में अनेक कष्ट भोगता है। ऐसा जान मिथ्यात्व का सर्वथा त्याग करना ही श्रेष्ठ है।

मिथ्यात्व के पांच भेद

पहले बता चुके हैं कि जीवादितत्वों के यथार्थ स्वरूप का श्रद्धान न होकर और रूप उल्टा श्रद्धान होने को मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्यात्व भाव के कारण संसारी जीव में अनेक तरंग उठती हैं अर्थात जीव के शान्त स्वभाव का नाश होता है। इसी कारण यह मिथ्यात्व कर्मो की उत्पत्ति का कारण है।

मिथ्यात्व पाँच प्रकार का होता है—एकान्त, विपरीत, विनय, संशय और अज्ञान।

एकान्त मिथ्यात्व—वस्तु में अनेक गुण होते हैं, जैसे दूध पीना शरीर को पुष्ट बनाता है, परन्तु बहुत से रोगों में हानिकारक भी है—इस हेतु से दूध लाभदायक भी है और हानिकारक भी। एक मनुष्य जो २० वर्ष का है वह १० वर्ष के बालक से बड़ा और ५० वर्ष के मनुष्य से छोटा है। इस हेतु वह बड़ा भी है और छोटा भी। इस ही प्रकार वस्तु में अनेक गुण होते हैं, परन्तु संसार के अल्पज्ञ जीव वस्तु के एक ही गुण को लेकर उसी के अनुसार उस वस्तु का श्रद्धान कर लेते हैं। इस ही का नाम एकान्त मिथ्यात्व है। श्रीवीतराग अरहंत भगवान हमारा न कुछ बिगाड़ते हैं और न कुछ संवारते हैं, क्योंकि वह तो राग द्वेष रहित वीतराग हैं, परन्तु उनका ध्यान करने से तथा उनकी वीतरागता का चिंतवन करने से हमारे परिणामों में वीतरागता आती है जिससे पाप कर्मों का क्षय होता है। इस हेतु वह हमारे दुःख को दूर करने वाले हैं, परन्तु उनको साक्षात् दुःख

का दूर करने वाला कर्ता परमेश्वर मानना एकांत मिथ्यात्व है। स्नानादि शरीर शुद्धि और शुचि क्रियासे मनकी मलिनता दूर करने में संसारी जीवो को सहायता मिलती है परन्तु स्नान करने या शुचि क्रिया ही कर लेन मे धर्म मानना और मन की शुद्धि का कुछ भी विचार न करना एकान्त मिथ्यात्व है। इस प्रकार वस्तु मे अनेक स्वभाव होते हुए उनमे से किसी एक रूप ही वस्तु का स्वभाव होने की हठ पकड़ना 'एका त मिथ्यात्व' है।

विनय मिथ्यात्व —सत्य और असत्य की परीक्षा न करके हरेक तत्व को ठीक मानकर भोले पन से विनय करना विनय मिथ्यात्व है। जैसे पूजने योग्य वीतराग सर्वज्ञ देव हैं, अलावा रागी-द्वेषी देव पूजने योग्य नहीं हैं तो भी सरल भाव से, विवेक बिना दोनो की बराबर भक्ति करना विनय मिथ्यात्व है। दूसरे शब्दो में यह कह सकते हैं कि बिना गुणो के विचारे समस्त ही देव कुदेवो की समान विनय करना और सारे ही मत मतान्तरो को एक ही मानकर उनकी भक्ति करना विनय 'मिथ्यात्व' है।

विपरीत मिथ्यात्व—जिस में कभी धर्म हो ही नहीं सकता उस को धर्म मान लेना विपरीत मिथ्यात्व है, जैसे हिंसा में धर्म मानना।

संशय मिथ्यात्व—सुतत्व और कुतत्व का निर्णय न करके संशय में पड़ा रहना। कौन ठीक है कौन ठीक नहीं है ऐसा एक तरफ निश्चय न करके भ्रम में पड़े रहना संशय मिथ्यात्व है। जैसे सम्यक् दर्शन, ज्ञान चारित्र रूप मोक्षमार्ग है या कि नहीं ?

अज्ञान मिथ्यात्व —तत्वों के जानने की चेष्टा न करके देखा देखी किसी भी तत्व को मान लेना "अज्ञान मिथ्यात्व" है। हिताहित की परीक्षा रहित श्रद्धान को "अज्ञान मिथ्यात्व" कहते हैं-जैसे वृक्षादि एकेन्द्रियजीवों को अपने हिताहित का कुछ भी ज्ञान नहीं है। बहुत से मनुष्य अपने सांसारिक कामों में ऐसे फँसे रहते हैं कि उन्हें धर्म का कुछ भी ज्ञान नहीं होता और धर्म की ओर से ऐसे ही अज्ञानी रहते हैं जैसे पशु या वृक्ष आदि, यह 'अज्ञान मिथ्यात्व' है।

यह मिथ्यात्व जीव का महान शत्रु है इसी से यह सँसारी जीव सँसार में परिभ्रमण कर रहा है। हम रोज देखते हैं कि सँसारी जीव मिथ्यात्व के वश होकर रागी द्वेषी देवों की भक्ति पूजा करते हैं। अविवेकी, अभक्ष्यभक्षण करने वाले, रोगी, दंभी मानी कुलिंगियों की तथा उनके मार्ग की प्रशंसा करते हैं। अपने कार्य की सिद्धि के लिए देवी देवताओं की बोलत कबूलत करते हैं। ऐसा विचार करते हैं कि हमारे अमुक प्रयोजन की सिद्धि हो जावे तो छत्र चढ़ावें, चँवर चढ़ावें, मंदिर बनवावें, बलि चढ़ावें चूरमा चढ़ावें, दीपक जलावें, बच्चों के बाल चोटी उतरवावें, यह सब तीव्र मिथ्यात्व है। ग्रहणमें सूतक मानना, सँक्रौंति मानना, ग्रहों का दान देकर अपने को सुख शांति का होना मानना, बालू रेत का ढेर लगाकर पूजना, कुआ पूजना, पीपल पूजना, शीतला, मसानी आदि का पूजना, उनको धोक देना इत्यादि ये सब मिथ्यात्व हैं। इनमें से किसी भी मिथ्यादर्शन में फंसा हुआ प्राणी निर्मल सम्यक्-दर्शन को नहीं प्राप्त कर सकता है

धर्म का श्रद्धान उसको नहीं हो पाता, मनुष्य जन्म को वृथा ही खो बैठता है। मिथ्यात्व के कारण प्राणी विषय भोगों की लालसा का मारा रात दिन विषय वासना की तृप्ति के फन्दे में फँसा रहता है, नाना प्रकार का अन्याय और अनीति करता है अभक्ष्य भोजन करता है, योग्य अयोग्य के विचार से रहित हो जाता है, हिंसादि पापोंको करते हुए सकुचाता नहीं। अपनी आत्मा का कल्याण चाहने वाले विवेकी पुरुषों को चाहिये कि मिथ्यात्व का त्याग करें और सम्यक्-दर्शन रूपी अमृत का पान करें। यह सच है—मिथ्यादृष्टि सदा दुखी-सम्यग्दृष्टि सदा सुखी।

प्रश्नावलि

(१) मिथ्यात्व कितने प्रकार का होता है ? उनके नाम भी बताओ।

(२) एकान्त मिथ्यात्व किसे कहते हैं दृष्टान्त देकर समझाओ

(३) विनय मिथ्यात्व क्या होता है ? दृष्टान्त सहित बताओ।

(४) संशय मिथ्यात्व से आप क्या समझते हैं ? दृष्टान्त भी दो।

(५) विपरीत मिथ्यात्व और अज्ञान मिथ्यात्व से तुम क्या समझते हो ? कोई दृष्टान्त भी दो।

(६) मिथ्यात्व से क्या २ हानियाँ जीव को होती हैं ?

(७) "मिथ्यादृष्टि सदा दुखी-सम्यक् दृष्टि सदासुखी" इस का अर्थ अपनी परिभाषा में समझाओ।

जीवन की सार्थकता

लगभग अढ़ाई हजार वर्ष पहले की बात है। हमारे अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान का कल्याणकारी विहार हो रहा था। उनका समवशरण राजगृह के पास विपुलाचल पर्वत पर आया था। सम्राट श्रेणिक भगवान के बड़े श्रद्धालु भक्त थे। श्री जिनेन्द्र भगवान का शुभागमन सुनकर उन्होंने नगर में मंगल-भेरी दिलवाई और नगर निवासियों, सामंत तथा मन्त्रियों से वेष्टित प्रभु की वन्दना तथा पूजा के लिए वन की ओर चल दिए। समवशरण में पहुंच कर भगवान के दर्शन वन्दना करके वहाँ बैठे और अवसर पाकर भगवान महावीर से बड़ी विनय पूर्वक प्रश्न किया—नाथ! आपने अपने महान त्याग और आदर्श अनुष्ठान से मनुष्य जीवन की सार्थकता का उपाय बता दिया है। आप पुरुषसिंह हैं, महावीर हैं, निर्ग्रन्थ मार्ग के सर्वश्रेष्ठ पथिक हैं, परन्तु नाथ! हम जैसे भीरू और कायर गृहस्थ इतने साहसी नहीं है कि एकदम मुनि अथवा आर्यिका हो जावें। अतएव नाथ! हमें भी मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने के लिए कोई सुगम मार्ग बताइये।

महाराज श्रेणिक के पूछने पर भगवान की दिव्य ध्वनि हुई जिसे गौतम गणधर महाराज ने ग्रहण किया और संसार के अन्य जीवों के कल्याण के निमित्त द्वादशांग रूप में सम्बद्ध किया। गुरु परम्परा से भगवान् की वह दिव्य वाणी आज भी

मिल रही है। श्री गौतम गणधर देव ने महाराज श्रेणिक के प्रश्न करने पर नीचे लिखी कथा कही।

'भद्रपुर में जिनचन्द्र नाम का राजा राज्य करता था। वह बड़ा दानवीर और प्रतापी था। जिनदत्ता और जिनमती नाम की उसकी दो रानियाँ थीं। जिनदत्ता के सूरदत्त और जिनमती के जिनदत्त नाम के पुत्र हुए।

सूरदत्त बलवान और शस्त्र विद्या में विशेष निपुण था। जिनदत्त शस्त्र विद्या खूब जानता था परन्तु भोगों से विरक्त था जिनचन्द्र सुख से शासन कर रहा था कि अचानक म्लेच्छों ने उस पर आक्रमण कर दिया। राजा ने जिनदत्त को म्लेच्छों से मोरचा लेने के लिए भेजा, परन्तु म्लेच्छों ने उसकी सेना को नष्ट कर दिया। वह लौट कर भद्रपुर आया।

इस पर सूरदत्त म्लेच्छों को मार भगाने के लिए गया। वह पराक्रमी शूरवीर था। म्लेच्छ उसके सामने टिक नहीं सके-वह हार गए। सूरदत्त विजयी होकर भद्रपुर लौटा। राजा और प्रजा ने उसका सम्मान किया। राजा ने उसे युवराज बनाया। सब लोग कहने लगे कि सूरदत्त के समान कोई शूरवीर नहीं है।

विवेकी जिनदत्त से चुप न रहा गया, वह सुनकर वह कहने लगा कि म्लेच्छों के जीतने में क्या बहादुरी है? वही मनुष्य सच्चा शूरवीर है जो क्रोध, मान, माया, लोभ, मद और काम-रूपी छह शत्रुओं को जीतता है, घोर परीषहों को समभाव

सकता है, वही महाशीलवान पुरुष पुंगव अपनी आत्मा को उन्नत करने के लिये तत्पर रहता है और लोक का कल्याण करता है। वह यथार्थ में शूर है।" जिनदत्त का यह कहना सूरदत्त के मन भागया। वह विरागी होगया, और श्रीधर मुनिराज के पास जाकर उसने जिन-दीक्षा लेली।

सूरदत्त ने जिस प्रकार संग्राम में अपने भुजबल और वीरता का परिचय देकर विजय प्राप्त की थी, वैसे ही उन्होंने धर्म मार्ग में घोर तप तपा और मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त किया—अपने आत्म कल्याण के लिये उन्होंने सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप की आराधना की और अपने मनुष्य जीवन को सार्थक बनाया।

श्रेणिक! मनुष्य जन्म पाने का यही सुफल है। दुनिया के धंधे में सफलता पाना गृहस्थ का कर्तव्य है अवश्य, परन्तु मनुष्य जीवन की सार्थकता आत्म कल्याण करने में ही है।" अपनी आत्म शक्ति के अनुसार सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्रमई रत्नत्रय धर्म की आराधना करनी चाहिए। यह जरूरी नहीं कि मुनिपद धारण करके ही उसकी आराधना करो, घर में रहकर भी धर्म की आराधना हो सकती है, परन्तु विरक्त परिणाम होना चाहिए। अपने हित और अहित को पहचानने की दृष्टि होनी चाहिए। विना विवेक के न मुनि और न गृहस्थ अपना कल्याण कर सकता है। भरत महाराज घर में ही वैरागी थे। धन और ऐश्वर्य में अन्धे नहीं हुए थे। जीवन का ध्येय केवल रुपया कमाना नहीं है—वह नाशवान है—छाया है। छाया अपने आप

पीछे २ चलेगी, आप केवल धर्म की आराधना कीजिये। कर्मवीर भी बनिये और धर्मवीर भी, सत्य है –

"जे कम्मे सूरा—ते धम्मे सूरा"

दो०—धर्म करत संसार-सुख, धर्म करत निर्वाण।
धर्म-पथ साधे बिना, नर तिर्यंच समान॥

प्रश्नावलि

(१) दिव्यध्वनि, द्वादशांग, और विहार से तुम क्या समझते हो ?
(२) सूरदत्त और जिनदत्त की कथा अपनी सरल भाषा में सुनाओ।
(३) सच्चा धर्मवीर कौन है ?
(४) इस कथा से आप को क्या शिक्षा मिलती है ?
(५) 'जे कम्मे सूरा ते धम्मेसूरा" इसका अर्थ समझाओ ?
(६) अंतिम दोहा सुनाओ और उसका अर्थ बताओ।
(७) मनुष्य जन्म सफल कैसे होता है ?

॥ शिक्षा के दोहे ॥

(बुधजन)

पाठ ७

एक चरण हू नित पढ़ै, तो काटै अज्ञान।
पनिहारी की नेजसों, सहज कटे पापान ॥ १ ॥
महाराज महावृक्ष की, सुखदा शीतल छाय।
सेवत फल भासै न तो, छाया तौ रह जाय ॥ २ ॥
मनुष जनम ले ना किया, धर्म न अर्थ न काम।
सो कुच अज के कठ में, उपजे गये निकाम ॥ ३ ॥
दुष्ट मिलत ही साधु जन, नहीं दुष्ट ह्वै जाय।
चन्दन तरु को सर्प लग, विष नहीं देत बनाय ॥ ४ ॥
दुर्जन सज्जन होत नहिं, राखो तीरथ वास।
मेलो क्यो न कपूर में, हींग न होय सुवास ॥ ५ ॥
दुष्ट कहै सुन चुप रहो, बोले ह्वै है हान।
माटा मारै कीच में, छींटे लागैं आन ॥ ६ ॥
रिपु समान पितु मात जो, पुत्र पढावें नाहिं।
शोभा पावें नाहिं सो, राजसभा के माँहि ॥ ७ ॥
को है सुत को है तिया, काको धन परिवार।
आकर मिले सराय में, बिछुरेंगे निरधार ॥ ८ ॥
पड़ी रहेगी सँपदा, धरी रहेगी काय।

पीछे २ चलेगी, आप केवल धर्म की आराधना कीजिये। कर्मवी
भी बनिये और धर्मवीर भी, सत्य है –

"जे कम्मे सूरा—ते धम्मे सूरा"

दो०—धर्म करत संसार-सुख, धर्म करत निर्वाण।
धर्म-पथ साधे बिना, नर तिर्यंच समान॥

प्रश्नावलि

(१) दिव्यध्वनि, द्वादशांग, और विहार से तुम क्या स
मझते हो ?

(२) सूरदत्त और जिनदत्त की कथा अपनी सरल भा
में सुनाओ।

(३) सच्चा धर्मवीर कौन है ?

(४) इस कथा से आप को क्या शिक्षा मिलती है ?

(५) "जे कम्मे सूरा ते धम्मेसूरा" इसका अर्थ समझाओ

(६) अंतिम दोहा सुनाओ और उसका अर्थ बताओ

(७) मनुष्य जन्म सफल कैसे होता है ?

॥ शिक्षा के दोहे ॥

(बुधजन)

पाठ ७

एक चरण [redacted] नित पढ़े, तो वाढे अज्ञान ।
पनिहारी की नेजसो, सहज कटे पाषान ॥ १ ॥
महाराज महावृक्ष की, सुखदा शीतल छाय ।
सेवत फल भासे न तो, छाया तो रह जाय ॥ २ ॥
मनुख जनम ले ना किया, धर्म न अर्थ न काम ।
सो कुच अज के कंठ में, उपजे गये निकाम ॥ ३ ॥
दुष्ट मिलत ही साधु जन, नहीं दुष्ट ह्वै जाय।
चन्दन तरु को सर्प लग, विष नहीं देत बनाय ॥ ४ ॥
दुर्जन सज्जन होत नहिं, राखो तीरथ वास ।
मेलो क्यो न कपूर में, हींग न होय सुवास ॥ ५ ॥
दुष्ट कहे सुन चुप रहो, बोले ह्वै है हान।
भाटा मारै कीच में, छींटे लागैं आन ॥ ६ ॥
रिपु समान पितु मात जो, पुत्र पढ़ावें नाहिं।
शोभा पावें नाहिं सो, राजसभा के माँहि ॥ ७ ॥
को है सुत को है तिया, काको धन परिवार।
आकर मिले सराय में, बिछुरेंगे निरधार ॥ ८ ॥
पड़ी रहेगी सँपदा, धरी रहेगी काय।

छल बल कर क्याहु न बचे, काल रपट ले जाय ॥ ९ ॥
भूख सहो दारिद सहो, सहो लोक अपकार।
निन्द्य काम तुम मत करो, यहै ग्रन्थ को सार ॥ १० ॥

प्रश्नावलि

(१) इन दोहों के बनाने वाले कौन हैं? उनके सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं।

(२) विद्या पढ़ने के सम्बन्ध में जो दोहे हैं उनका अर्थ बताओ।

(३) संसार की असारता बताने वाले दोहे सुनाओ और उनका अर्थ भी समझाओ।

(४) अन्तिम और ३ ४ ५ ६ दोहा से क्या शिक्षा मिलती है?

व्यवहार सम्यग्दर्शन

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वों के श्रद्धान को व्यवहार सम्यग्दर्शन बताया है-इन सात तत्वों का स्वरूप चौथे भाग में आप पढ़ चुके हैं, प्रसङ्ग वश यहाँ भी संक्षेप से कुछ बता देना अनुचित न होगा।

(१) जीवतत्व—चेतना लक्षण जीव है—जीव तीन प्रकार के होते हैं बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा।

(अ)बहिरात्मा-मिथ्यादृष्टि जीव जो शरीर आत्मा को एक ही गिनते हैं, जो तत्वो के स्वरूप को जानते ही नहीं, जिनकी इच्छाएँ बलवती होती जाती हैं, जो विषय चाह की अग्नि मे रात दिन जलते रहते हैं, जो अपनी आत्म शक्ति को खो बैठते हैं और जो मोक्ष के अविनाशी अविकार सुख के खोजने के लिये कोई प्रयत्न ही नहीं करते बहिरात्मा हैं।

(आ)अन्तरात्मा-जो आत्मा को जानते हैं, आपा पर के भेद को जानते हैं और समझते हैं ऐसे भेद ज्ञानी सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा कहलाते हैं। ये अन्तरात्मा भी तीन प्रकार के होते हैं

(क)उत्तम अन्तरात्मा-अन्तरंग और बहिरंग के २४ प्रकारके परिग्रह से रहित शुद्ध परिणामी आत्म ध्यानी मुनि उत्तम अन्तरात्मा हैं।

(ख) मध्यम अन्तरात्मा-देशव्रती गृहस्थ और छठे गुणस्थान वर्ती मुनि मध्य अन्तरात्मा है।

(ग) जघन्य अन्तरात्मा-व्रतरहित चौथे गुणस्थान वर्ती सम्यग्दृष्टि जघन्य अतरात्मा हैं।

(इ) परमात्मा—अत्यन्त विशुद्ध आत्मा को परमात्मा कहते हैं–परमात्मा के दो भेद है-एक सकल परमात्मा, दूसरे निकल प्रमात्मा, जिन्होने चार घातिया कर्मो का नाश कर दिया है, जो लोकालोक को देखने वाले है ऐसे सर्वज्ञ, वीतराग परम हितोपदेशी आत्माओं को 'सकल परमात्मा' या अरहंत कहते हैं।

आत्मा का हित सुख पाने में है, सुख उसे कहते हैं जिस में आकुलता अर्थात् किसी प्रकार की भी कोई चिंता न हो—अकुलता मोक्ष में नहीं है। संसार में तो सब ही जगह आकुलता पाई जाती है। इसलिये सुख के चाहने वालों को मोक्ष के मार्ग पर चलना चाहिए। मोक्षमार्ग सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप है। इन तीनों के स्वरूप का विचार दो तरह से करना चाहिए। एक तो निश्चय रत्नत्रय रूप से, यह तो ठीक ठीक सच्चा स्वरूप है। दूसरा व्यवहार रूप से यह व्यवहार मोक्षमार्ग निश्चय मोक्षमार्ग के पाने का कारण है।

पर अर्थात् अन्य द्रव्यों से आत्मा को जुदा जानकर शुद्ध आत्मा के सच्चे स्वरूप में श्रद्धान करना निश्चय सम्यग्दर्शन है

शुद्ध आत्मा के स्वरूप का विशेष ज्ञान होना निश्चय सम्यक् ज्ञान है।

शुद्ध आत्मा के स्वभाव में रमण करना अर्थात् एक चित हो लीन तथा तन्मय हो जाना निश्चय सम्यक् चारित्र है।

निश्चय मोक्षमार्ग को प्राप्त करने में व्यवहार मोक्षमार्ग कारण है। जिनके द्वारा निश्चय रत्नत्रय का लाभ हो उनको व्यवहार रत्नत्रय कहते हैं। जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वों के श्रद्धान को या इनमें पुण्य और पाप को और मिलाकर नौ पदार्थों के यथार्थ श्रद्धान को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं। सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु के श्रद्धान को भी सम्यग्दर्शन कहते हैं। जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए आगम के ज्ञान को व्यवहार सम्यग्ज्ञान

हते हैं और अशुभ मार्ग की निवृत्ति तथा शुभ-मार्ग को प्रवृत्ति यवहार सम्यक्चारित्र है।

अब यहाँ पर पहले व्यवहार सम्यग्दर्शन का वर्णन करते हैं;—

जिन्होने ज्ञानावरणादि अष्ट द्रव्य कर्म, रागद्वेष क्रोधादि भाव कर्म और शरीरादि नोकर्म इन तीनो प्रकार के कर्मों का नाश कर दिया है, ज्ञान ही जिनका शरीर है जो लोक के अग्र भागमें स्थित है,जो अनन्त कालतक आत्मा के स्वाधीन, निराकुल सुख का निरन्तर अनुभव करते रहते हैं—ऐसे परमात्माओं को 'कृतकृत्य' निकल परमात्मा या सिद्ध कहते हैं।

इनमें से बहिरात्मपने का त्याग कर अन्तरात्मा बन सम्यैव दोनो प्रकार के परमात्मा की सेवा करना योग्य है। इससे ही निरन्तर आनन्द की प्राप्ति हो सकेगी।

(२) अजीवतत्व—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल पाँच चेतना रहित अजीव द्रव्य हैं। इनमें से पुद्गल मूर्तीक हैं क्योंकि इसमें स्पर्श, रस, वर्ण, गंध गुण पाये जाते हैं, बाकी चार द्रव्य धर्म, अधर्म, आकाश और काल अमूर्तिक हैं।

धर्मद्रव्य—जीव और पुद्गल को चलने में उदासीन रूप से सहकारी है। अधर्म-द्रव्य चलते हुए जीव और पुद्गल के ठहरने में उदासीन रूप से सहकारी होता है।

आकाश द्रव्य—इसमें जीवादि द्रव्यो को अवकाश देने की योग्यता होती है—इसके दो भेद हैं। लोकाकाश और अलोका

काश—धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव जिस हद तक आकाश में पाये जाते हैं उसे लोकाकाश कहते हैं, उससे बाहर को अलोकाकाश कहते हैं।

कालद्रव्य—इसके दो भेद हैं-एक निश्चय काल और दूसरा व्यवहार काल।

निश्चयकाल—का काम सब द्रव्यों में परिवर्तन होने में सहायता करने का है।

समय, घड़ी, पहर, दिन, महीना और वर्ष आदि को व्यवहार काल कहते हैं।

इन छहों द्रव्यो में से जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश यह पाँच तो बहुप्रदेशी होने के कारण पचास्तिकाय कहलाते हैं काल के एक ही प्रदेश होता है इस कारण वह काय नहीं है।

[३] आस्रवतत्व—कर्म वर्गणाओं के खिंचकर आत्मा के पास आने को तथा कर्मों के आने के कारण को आस्रव कहते हैं—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद योग और कषाय कर्म आस्रव के प्रबल कारण हैं।

[४] बंधतत्व—कर्मों के आत्मा के साथ बंधने के कारण को तथा आये हुए कर्मों के आत्मा के साथ बंध जाने को बन्ध तत्व कहते हैं।

[५] संवरतत्व—कर्मों के आने के कारण को तथा आते हुए कर्मों के रुक जाने को संवर कहते हैं।

(६) निर्जरातत्व—कर्मों के झड़ने के कारण को तथा कर्मो के झड़ने को निर्जरा कहते हैं।

(७) मोक्षतत्व—सर्वकर्मो से छूट जाने के कारण को व आत्मा के कर्मो से पृथक् हो जाने को मोक्ष कहते हैं। यह ...त जीव और अजीव अर्थात् जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल इन छह द्रव्यों का समुदाय है। पुद्गलों में सूक्ष्म जाति की कर्म-वर्गणायें हैं या कर्म-स्कन्ध हैं, उन्हीं के संयोग से आत्मा अशुद्ध होता है। आस्रव और बंधतत्व अशुद्धता के कारणों को बताते हैं। संवर अशुद्धता को रोकने का व निर्जरा अशुद्धता के दूर होने का उपाय बताते हैं। मोक्ष बंध रहित तथा शुद्ध अवस्था का नाम है। ये सात तत्व बड़े उपयोगी हैं। इनके स्वरूप को ठीक २ जाने बिना आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता—इन्हीं का सच्चा श्रद्धान व्यवहार सम्यक्-दर्शन है। इन्हीं के मनन से निश्चय सम्यक्-दर्शन होता है। इसलिये ये निश्चय सम्यक्-दर्शन के होने में बाहिरी निमित्त कारण हैं। अंतरंग निमित्त कारण अनंतानुबंधी चार कषाय और मिथ्यात्व कर्म का उपशम होना या दबना है।

इन्हीं सातों तत्वों में पाप पुण्य दोनों को और मिला देने से नौ पदार्थ हो जाते हैं।

ऊपर सात तत्वों का श्रद्धान व्यवहार सम्यक्-दर्शन बताया गया है। निर्दोष बाधारहित आगम के उपदेश बिना सप्ततत्वों का श्रद्धान कैसे हो सकता है, और निर्दोष आप्त अर्थात् देव के बिना

सम्यक्त्व का होना क्षायक सम्यक्त्व है। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में यद्यपि सम्यक्त्व होता है, परन्तु मिथ्यात्व की झलक होने के कारण मल सहित होता है इसको वेदक या क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं। इस सम्यक्त्व में चल, मल और अगाढ़ ये तीन प्रकार के दोष होते हैं। सम्यक्-दर्शन मोक्ष-रूपी महल में चढ़ने की पहली सीढ़ी है, इसके बिना ज्ञान और चारित्र सम्यक्पन को प्राप्त नहीं होते। जैसे भी बने शास्त्र स्वाध्याय द्वारा अथवा सत्संगति द्वारा सच्चे देव, शास्त्र, गुरु का तथा सात तत्वों का स्वरूप समझकर सम्यक् दर्शन रूपी रत्न से अपने आत्मा को पवित्र करना चाहिये।

छप्पय छंद

छहों द्रव्य नव तत्व, भेद जाके सब जानै।
दोष अठारह रहित, देव ताको परमानें॥
संयम सहित सुसाधु, होय निरमन्य विरागी।
मति अविरोधी ग्रन्थ, ताहि मानें परत्यागी॥
वर केवल भाषित धर्म धर, गुणथानक बूझै मरम।
भैया निहार व्यवहार यह सम्यक् लक्षण जिनवरम॥



प्रश्नावलि

(१) सम्यक्-दर्शन किसे कहते हैं ?
(२) व्यवहार सम्यक्-दर्शन से तुम क्या समझते हो ?
(३) तत्व कितने हैं ? उनके नाम बताओ—प्रत्येक का

स्वरूप भी समझाओ ।

(४) आत्मा के प्रकार की होती हैं ?

(५) बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा का स्वरूप समझाओ ।

(६) परमात्मा के कितने भेद हैं, और कौन २ से ?

(७) व्यवहार सम्यक् दर्शन और निश्चय सम्यक् दर्शन में क्या भेद है ?

(८) व्यवहार सम्यक् ज्ञान और निश्चय सम्यक् ज्ञान में क्या अन्तर है ?

(९) व्यवहार सम्यक् चारित्र और निश्चय सम्यक् चारित्र म क्या अन्तर है ?

(१०) व्यवहार मोक्षमार्ग और निश्चय मोक्षमार्ग मे क्या अन्तर है ?

(११) द्रव्य कितने हैं ? उनके नाम बताओ और संक्षेप में प्रत्येक का स्वरूप समझाओ ।

(१२) व्यवहार और निश्चय काल में क्या अन्तर है ?

(१३) सच्चा देव किसे कहते हैं ?

(१४) सच्चे गुरु के लक्षण बताओ ?

(१५) सच्चा शास्त्र किसे कहते हैं ?

(१६) सम्यक्त्व के प्रकार का होता है ?

(१७) उपशम सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व से तुम क्या समझते हो ?

(१८) चल, मल और अगाढ़ दोष क्या होते हैं ?

(१९) द्रव्य कितने हैं, उनके नाम बताओ। प्रत्येक का स्वरूप समझाओ।

(२०) अस्तिकाय किसे कहते हैं। कौन २ द्रव्य अस्तिकाय हैं और कौन कौन नहीं ?

—>>>*<<<—

सम्यक्त्व के आठ अङ्ग

जैसे शरीर के आठ अङ्ग होते हैं—मस्तक, पेट, पीठ, दो भुजायें, दो टाँगें, एक कमर। यदि इनको जुदा जुदा कर दिया जावे तो शरीर नहीं रहता, इसी तरह सम्यक्त्व के आठ अंग होते हैं, यदि ये न हो तो सम्यक्त्व पूर्ण नहीं होता।

(१) निःशंकित अंग—जिन भगवान के कहे वचनों में संशय न करना निःशंकित अंग है। जिन सात तत्वों की श्रद्धा करके सम्यक्त्वी हुआ है उन पर कभी शंका नहीं लाना—जो जानने योग्य बातें अपनी समझ में नहीं आवें और जिनागम में बताई गई हैं, उन पर सम्यक्त्वी अश्रद्धान नहीं करता, उनको विशेष ज्ञानी से पूछने और समझने का उद्यम करता है। सम्यक् दृष्टि निर्भय होता है, वह अपने श्रद्धान में सदैव दृढ़ और निश्चल रहता है। सात भय ये हैं—इसलोक भय, परलोक भय, वेदना भय, अरक्षाभय, अगुप्ति भय, अकस्मात भय और मरण भय।

(२) निःकाँक्षित अंग–[illegible]
जनित सुखों की इच्छा नहीं करता। [illegible]
को और भोगों को पराधीन, [illegible]
करने वाला, तृष्णा को बढ़ाने [illegible]
करने वाला समझता है।

(३) निर्विचिकित्सा–मुनिराज [illegible]
को मैला देख कर घृणा नहीं कर[illegible]
जीव को दुखी दरिद्री, अपवित्र [illegible]
देख कर उस से ग्लानि नहीं करता है [illegible]
कर्म जनित है, संसार की अपवित्र [illegible]
देखकर घृणा नहीं करता। यही [illegible]
का स्वभाव ही ऐसा है, इन में [illegible]
देखकर उनसे घृणा नहीं करता [illegible]
प्रेरणा करता है, उनके लिये [illegible]
इस अंग के पालन करने वाला [illegible]
डींग नहीं मारता, अपना शरीर [illegible]
नहीं समझता, विचारता है कि [illegible]
सब कर्म जनित है। वास्तव में [illegible]
उनमें कोई भेद द्रव्य-दृष्टि से नहीं [illegible]
प्राणियों पर दया भाव रख [illegible]
करता है। रोगियों की सेवा करता [illegible]
के उठाने में ग्लानि नहीं करता है। [illegible]

लिये भरसक प्रयत्न करता है। जिसके निर्विचिकित्सा अंग है उसी के दया है, उसी के अहिंसा है, उसी के वात्सल्य है और उसी के वैयावृत्य होता है।

४) अमूढ़-दृष्टि अंग—खोटे खरे तत्व की पहचान कर मूढ़ता की ओर नहीं जाना अमूढ़-दृष्टि अंग है। सम्यग्-दृष्टि बे सोचे, बिना समझे, बिना परीक्षा किये अन्धे की तरह लोगों की देखा देखी, मिथ्यात्व के बढ़ाने वाली निरर्थक क्रियाओं को धर्म मान कर नहीं पालता है। प्रत्येक धर्म क्रिया को ज्ञान पूर्वक विचार कर ही करता है, जो रत्नत्रय के साधक कार्य हैं, उन्हीं को करता है। मूढ़ बुद्धि को बिल्कुल त्याग देता है। लोभ से, भय से, आशा से तथा लज्जा से किसी प्रकार भी कुदेव, कुगुरु, कुधर्म तथा उनके मानने वालों को भक्ति भाव से प्रणाम नहीं करता, उनकी विनय और प्रशंसा नहीं करता।

(५) उपगूहन अंग—पराये दोषों को ढाँकना उपगूहन है। यदि किसी समय में किसी धर्मात्मा पुरुष से उसके अज्ञान से या उसकी कमजोरी से कोई दोष बन जाता है तो सम्यक् दृष्टि इस ख्याल से कि यदि यह दोष प्रगट हो गया तो धर्म की निन्दा होगी, धर्मात्माओं को लोग दूषण लगावेंगे, प्रभु के निर्दोष मार्ग की निन्दा होगी, धर्म से सच्ची प्रीति रखते हुए धर्म को अपवाद से बचाने के लिये उसके दोष को छिपाता है। ऐसी दशा में करुणा बुद्धि धारण कर उसका यथा योग्य सुधार करना ही अपना कर्तव्य समझता है।

(६) स्थितिकरण अंग—किसी समय में यदि कोई धर्मात्मा खोटी संगति से, रोग के कारण से, दरिद्रता से मिथ्या उपदेश से या अन्य किसी कारण से धर्म से गिरता हो तो धर्म प्रेमी सम्यक्-दृष्टि उसको जैसे भी बने धर्म में स्थिर कर देता है, यह स्थितिकरण अंग है। इस अंग का पालक अपने आत्मा को सत्य धर्म में स्थिर करता रहता है तथा दूसरों को धर्ममार्ग में स्थिर रहने की प्ररणा करता रहता है।

७ वात्सल्य अंग—जैसे गऊ अपने बछड़े से प्रीति करती है, वैसी धर्मात्मा से प्रीति करना वात्सल्य अंग है। जिसके अहिंसा से प्रीति होती है, जो सत्य और सत्यवादियों का उपासक है, जिसको सच्चे धर्म से प्रेम है, जो पर-धन और पर-स्त्री की लालसा नहीं रखता है उसी के वात्सल्य होता है। जिस के हृदय में धर्म और धर्मात्माओं के प्रति अनुराग है, जो त्यागी, तपस्वी, सन्यासी धर्मात्माओं के साथ बड़े आदर पूर्ण व्यवहार करता है उस के वात्सल्य होता है। इस अंग का पालन करने वाला सम्यक् दृष्टि अन्य धर्म वालों से द्वेष नहीं करता है ? उन पर भी दया भाव रखता है और उनके प्रति मध्यस्थ रहता है। किसी प्रकार भी उनसे शत्रुता का भाव नहीं करता है, उनका बिगाड़ नहीं चाहता, उनके धर्म स्थान, देवालय, मठ आदि को नष्ट भ्रष्ट नहीं करना चाहता, विचारता है कि जिसको जैसा सम्यक या मिथ्या उपदेश मिलता है वैसी ही उसकी प्रवृत्ति हुआ करती है। समस्त प्राणियों के लिये उसके मैत्री भाव होता

है, उसको किसी से वैर नहीं होता, गुणवानों के लिये उसके दिल में हर्ष का भाव होता है, दीन दुखी जीवों के लिये उसके हृदय में करुणा होती है और विरोधियों की ओर वह मध्यस्थ रहता है। इस अंग का धारक, धर्म और धर्मात्माओं के प्रति प्रेम भाव रखते हुए उनके दुखों को मिटाने का भरसक प्रयत्न और उद्यम किया करता है।

प्रभावना अंग—जिस प्रकार भी बने जैनधर्म की उन्नति करना और ऐसे कार्य करना कि जिनके करने से संसार के सब जीवों पर धर्म का प्रभाव पड़े।

जैनधर्म की प्रभावना दान देने से, घोर दुर्द्धर तपश्चरण करने से, शील संयम पालने से, निर्लोभता से, विनय से, हर्ष तथा उत्साह पूर्वक जिनेन्द्र प्रभु के अभिषेक-पूजन करने से तथा तत्वों का प्रचार करने से, साधारण जनता में से ज्ञान प्रचार द्वारा अज्ञान अंधकार को मिटा देने से, परोपकार से बढ़ती है, सम्यक् दृष्टि इन सब कारणों को जुटाने के लिये भरसक प्रयत्न किया करता है, वह चाहता है कि जैनियों के निर्मल आचरण, दान, तप, शील भावना, विनय, क्षमा, दया, अहिंसा, भक्ति, श्रद्धान, उनकी विद्वत्ता, निष्कपटता, निष्पक्षता, निर्भीकता, मैत्रीभाव, सहन शीलता, करुणा और परोपकार भाव इत्यादि गुणों को देख कर दूसरे धर्म वाले भी प्रशंसा करें और कह उठें कि धन्य है इनके धर्म को, इनके आचरण को, इनके स्वार्थ-त्याग को, प्राण जाते हुए भी यह अपने

नियम व्रत को भंग नहीं करते, इनका जीवन अनुकरणीय है।" इसी का नाम प्रभावना है। इस अंग का पालक धर्म की उन्नति करने का निरंतर प्रयत्न करना अपना मुख्य कर्तव्य समझता है, जिस प्रकार भी बने और मानव सत्य धर्म से प्रभावित होकर सत्य को ग्रहण करें ऐसा यत्न सदैव करता कराता रहता है।

इन आठों अङ्गों के समुदाय का नाम ही सम्यक-दर्शन है। अङ्गी अङ्गों से जुदा नहीं हुआ करता, अङ्गों के समूह की एकता ही तो अङ्गी है। इन गुणों से उल्टे शंकादिक आठ दोष हैं, जो २५ दोषों में गर्भित हैं। सबसे दूर करके सम्यक-दर्शन को निर्मल बनाना चाहिये।

सवैया ३१

धर्म में न संशय शुभ कर्म फल की न इच्छा,
अशुभ को देख न गिलानि आन चित में।
साँची दृष्टि राखें काहू प्राणी को न दोष भाखें,
चंचलता भानि थिति ठान बोध चित में॥
प्यार निजरूप से उछाह की तरंग उठे,
एह आठो अङ्ग जब जागें समकित में।
ताहि समकित को धरें सो समकितवंत,
वेही मोक्ष पावें औ न आवें फिर इत में॥

प्रश्नावलि

(१) सम्यक्त्व के कितने अङ्ग होते हैं ? नाम बताओ।
(२) निःशंकित अङ्ग किसे कहते हैं ?
(३) निःकांक्षित अङ्ग से आप क्या समझते हैं ?
(४) निर्विचिकित्सा अङ्ग से आप क्या समझते हैं ?
(५) अमूढदृष्टि तथा उपगूहन अङ्ग का स्वरूप समझाओ ?
(६) स्थिति करण से आप क्या समझते हैं ?
(७) वात्सल्य अङ्ग पर एक छोटा सा लेख लिखो।
(८) प्रभावना किसे कहते हैं ? सच्ची प्रभावना क्या है ?
(९) सच्ची प्रभावना के कुछ उपाय सुनाओ।

सम्यक्दृष्टि निर्भय होता है

सम्यक् दृष्टि निर्भय होता है। जिसको तत्वों में पूर्ण श्रद्धान होता है और संसार के सब प्रकार के दुःख सुख को कर्म जनित जानता है, और सांसारिक दुःख सुख को अपने से पर समझता है तो उसको भय ही किस बात का होवे, उसको भय तो तब हो, जब पर पदार्थों को अपना समझता हो, वह तो अपने श्रद्धान में अडिग होता है। एक सच्चे वीर योद्धा की तरह सब कठिनाइयों को चीरता हुआ अपने ध्येय की ओर आगे आगे बढ़ता चला जाता है, अपने निश्चित मार्ग से पीछे हटता नहीं भय सात प्रकार का होता है।—

इसलोक का भय—सम्यक् दृष्टि के इस लोक का कोई भी भय नहीं होता। वह धन संपदा, शरीर, स्त्री, पुत्र, धन धान्य

राग आदिक को अपने से बिलकुल जुदा जानता और देखता है—वह समझता है कि कर्म के उदय से इनका संयोग है, और कर्म के उदय से ही इनका वियोग भी अवश्य होगा। जो जन्मता है उसका नाश भी अवश्य होता है। वह तो अपने को समझता है मैं ज्ञान स्वरूप हूँ, अविनाशी हूँ, अजर अमर हू, शुद्ध चेतना स्वभाव का धारक हू। उसका ऐसा दृढ़ श्रद्धान है, वह अपने निश्चित मार्ग पर एक सच योद्धा की तरह डटा रहता है।

परलोक-भय—सम्यक्-दृष्टि के इस बात का भय नहीं होता कि मरने के बाद मेरा क्या बनेगा, मैं कहाँ किस क्षेत्र में जन्म लूंगा, दुःखी होऊंगा या सुखी—वह अपने किये हुए कर्मों का फल भोगने से घबराता नहीं। वह विषयों का लोलुपी नहीं होता। अपने कर्मोदय पर संतोष रखता हुआ परलोक की चिन्ताओं का जरा सा भी भय अपने दिल में नहीं मानता।

मरण-भय—सम्यक्-दृष्टि मृत्यु से डरता नहीं वह तो मरण को चोला बदलने के समान जानता है, वह आत्मा को अजर अमर मानता है। शरीर जड़ है, अवश्य ही एक रोज यह शरीर मुझ से छूटेगा, शरीर मुझ से भिन्न है, मैं चैतन्य अविनाशी हूँ। मृत्यु का मुकाबला समताभाव के साथ करने के लिये एक वीर योद्धा की तरह हर समय तय्यार रहता है। मौत के डर के मारे वह अपने नियत मार्ग से नहीं डिगता।

वेदना भय—रोग हो जाने पर सम्यक्-दृष्टि घबराता नहीं,

उस से डरता नहीं—समताभाव के साथ, कर्म की निर्जरा का हेतु जान, रोग की वेदना को सहन करता है—यथायोग्य इलाज करता कराता है। वह निरोग रहने का उपाय करता है, अपना खान पान आहार विहार, निद्रा आदि क्रियाओं को बड़ी सावधानता से करता है। वह शरीर को आत्मा से भिन्न समझता है, विचारता है रोग तो शरीर में है, आत्मा मे नहीं—यह रोग कर्म का भोग है यदि ज्ञान पूर्वक शान्ति के साथ सहूँगा तो मैं मरूँगा, संक्लेशित होने से आगे के लिये और नया कर्म बंध जावेगा। ऐसा जान वह वेदना से डरता नहीं, परन्तु निरोग होने के लिये यथोचित उपाय अवश्य करता है।

अनरक्षा-भय—सम्यग्-दृष्टि के ऐसा विचार नहीं होता कि मेरा रक्षक संसार में कौन है। यदि वह अकेला कहीं परदेश में, जंगल में या किसी और स्थान में होता है, कोई आपत्ति आजाती है तो वह घबराता नहीं डरता नहीं। उसे अपने आत्मा के अजर अमर पने पर भरोसा होता है। उस समय में वह विचारता है मेरी आत्मा ही अपनी शरण आप है—न इसका कोई रक्षक है और न कोई इसका घातक है—व्यवहार में अरहंत, सिद्ध, साधु तथा भगवान का धर्म ही एकमात्र शरण है। निर्भय हुआ आपत्ति को धर्म भावना के साथ दृढ़ता पूर्वक झेलता है।

अगुप्ति भय—सम्यक्-दृष्टि के ऐसा भय नहीं आता कि हमारा माल खजाना लुट गया तो क्या होगा ? चोर डाकू लक्ष्मी लूट

कर ले गये तो क्या बनेगा ? वह अपनी रक्षा का प्रबन्ध करता है, पूरा पूरा प्रयत्न करता है, परन्तु रहता निश्चिन्त है। विचारता है हमारा कर्त्तव्य तो केवल न्याय करना है, यदि प्रबन्ध करते २ भी असाता वेदनीय कर्म के उदय से हानि होता है तो होवे, अधीर क्यों को होना। यदि पुण्य का उदय है तो हमारा प्रयत्न अवश्य सफल होगा, हानि क्यों होगा। पुण्य का उदय है तो लक्ष्मी बनी रहेगी, चोर डाकू वगैरह कुछ नहीं कर सकते, पुण्योदय ही यदि नहीं रहा तो लक्ष्मी चली जायेगी—लक्ष्मी जड़ है, मुझसे भिन्न है। मेरी शुद्ध चेतना रूप विभूति तो मेरे पास है, उसे तो कोई लूट नहीं सकता, छू नहीं सकता वहाँ किसी का प्रवेश ही नहीं।

अकस्मात् भय—सम्यग्दृष्टि के इस बात का भय नहीं कि न मालूम किसी समय अचानक क्या हो जाव। उसके इस बात का भय नहीं कि बिजली गिर गई तो क्या होगा, भूकम्प आगया तो क्या होगा, युद्ध हो रहा है बम्ब का गोला अचानक आपड़ा तो क्या बनेगा ? इस प्रकार के खयालों भय उस के दिल में नहीं आते—प्रयत्न करता है नतीजे को कर्मोदय पर छोड़ देता है, भयभीत नहीं होता। यदि कोई ऐसी दुर्घटना, रक्षा का प्रयत्न करते २ भी होजाती है तो कम का फल समझ धैर्य तथा समता के साथ उसे सहन करता है, कायर नहीं होता।

इस प्रकार एक सम्यग्दृष्टि इन सब भयों से रहित होता है, निःशङ्क रहता है, उसे कोई भय छू नहीं पाता। वह आत्मबल का धनी विचारशील होता है, एक वीर योद्धा की तरह जीवन की

कठिनाइयों को चीरता हुआ, अपने नियत मार्ग पर आगे बढ़ता हुआ, अपने ध्येय की ओर सीधा चला जाता है।

प्रश्नावलि

(१) सम्यक्दृष्टि के भय होता है या नहीं ? यदि नहीं तो क्यों ?

(२) भय कितने प्रकार का होता है ?

(३) इसलोक भय और परलोकभय से तुम क्या समझते हो ?

(४) मरण भय किसे कहते हैं ?

एक सम्यक्दृष्टि बीमार पड़ जाने पर अपना इलाज कराता है या नहीं ?

(५) वेदना भय क्या होता है ?

(५) अगुप्तिभय किसे कहते हैं ?

(७) अनरक्षा भय और अकस्मात् भय से आप क्या समझते हैं।

(८) आपत्ति के समय एक सम्यक्दृष्टि अपनी रक्षा के उपाय करता है या नहीं ? यदि करता है तो क्या समझ कर ?

(९) नीचे लिखी हालतों में सम्यक्दृष्टि क्या करेगा और क्या नहीं ?

(क) पुत्र के सख्त बीमार होने पर।

(ख) गली में भयानक मरी-रोग के फैल जाने पर।

(ग) अकेला होते हुए किसी मुकद्दमे में फंस जाने पर।

(घ) भूचाल आने पर, बाढ़ आजाने पर, मार्ग में जाते हुए डाकुओं के आजाने पर, युद्ध में लड़ते २ शस्त्र से घायल होकर गिरते समय।

सम्यक्‌दृष्टि की निरभिमानता

संसारी जीव अनादि काल से मिथ्यात्व के उदय से पर्याय-बुद्धि होरहा है। जाति, कुल, विद्या, बल, ऐश्वर्य, रूप, तप, धन आदि को अपना आपा मान गर्व किया करता है। वह अज्ञान से यह नहीं जानता कि ये सब कर्म के आधीन हैं, पुद्गल के विकार हैं, विनाशीक हैं, क्षण भंगुर हैं। सम्यक्‌दृष्टि समझता है कि ये सब मुझ से जुदा है, मेरा स्वरूप इनसे भिन्न है, मैं चेतना-स्वरूप हूँ, यह पर हैं, विनाशीक हैं, क्षण भंगुर हैं, इन का गर्व करना संसार भ्रमण का कारण है। इसलिये सम्यक्‌दृष्टि किसी प्रकार का मद (घमंड) नहीं किया करता है। मान करने से नीच गति का बंध होता है।

मद आठ बातों का होता है—जातिमद, कुलमद, विद्यामद, बलमद, ऐश्वर्यमद, रूपमद, तपमद, और धनमद,

१ जातिमद—माता के पक्ष को जाति कहते हैं। अपने नाना मामा के कुल का घमंड करना जातिमद है। मेरी माँ बड़े ऊँचे कुल की है, मेरे नाना, मामा बड़े २ आदमी हैं, उन्होंने बड़े बड़े कारज किये है, बड़े धनाढ्य हैं, चलती वाले हैं इत्यादि घमंड करना जातिमद है।

२ कुलमद—पिता के वंश को कुल कहते हैं। सम्यक्‌दृष्टि कुल का घमंड नहीं करता। वह तो विचारता है किजाति और कुल का क्या मान करु। यदि उच्च-जाति और कुल का होकर धोवा

मान करता हूं, नीच काम करता हूँ, नीच आचरण कर रहा हूं तो धिक्कार है मेरे जीवन को। कर्मोदय से यदि उच्च जाति और कुल मिल भी गये तो मेरा कर्तव्य यह है कि नीच व अधम आचरण का त्याग करूँ, विवेक से काम लूँ। कलह झगड़ा करना मारल-साइन, गाली-गलोज, भंड वचन बोलना मुझे उचित नहीं। जुआ, वेश्या सेवन, परधन हरना, हिंसा करना, अन्याय अनीति से धन कमाना, उच्च-कुल और उच्च जाति वाले के लिये उचित नहीं। उच्च-कुल में या जाति में जन्म लिया तो मेरा यही कर्तव्य है कि हिंसा न करूँ, झूठ न बोलूँ, चोरी न करूँ, छलरूप न करूँ, माँस-मदिरा का त्याग करूँ, जीव-दया पालूँ, परोपकार करूँ, अपना आत्म कल्याण करूँ, यही मेरा कर्तव्य है। ऐसे ही सदाचार से उच्च-कुल और उच्च-जाति की शोभा है। अनेक बार नाना प्रकार की उच्च व नीचजातियों में जन्म हुआ, अब मैं किसी को नीच जाति का मान काहे को मान कर

में जन्म ले काहे को घमँड करूँ। यह सन

मेरा मान करना मुझे अपने आप नीच बनाना

कि अपने जीवन को क्षमा, स्वाध्याय,

परोपकार आदि सद्गुणो के द्वारा ऊँचा बनाऊँ

का मान करके अप नष्ट न करूँ।

बलमद

बल का मद नहीं कि

बल पाकर मैं

धरती, स्त्री आदि

अपमान और तिरस्कार करू तो मेरे में और सर्प सिंह आदि दुष्ट हिंसक जीवों में क्या अंतर रहा—अब पुण्योदय ने यदि यह बल पाया है तो मेरा कर्तव्य है कि इससे दूसरों की रक्षा करू, धर्म की रक्षा करू, ब्रह्मचर्य का पालन करू, व्रत, उपवास शील-संयम का पालन करू, तपश्चरण करू। यदि कोई कष्ट या आपत्ति आवे तो उसमें कायर न होऊँ। धैर्य के साथ सहन करू, दीनता को पास न फटकने दू, असहाय निर्बलों की सहायता, शरणागतों की रक्षा करू। दीन-हीन असमर्थ जनों के दुष्ट वचनों को सुनकर उनसे बदला चुकाने की सामर्थ्य अपने को होते हुए भी उनको क्षमा करू। अपने आत्मबल के द्वारा तपश्चरण पर कर्मों को क्षय कर मोक्ष के स्वाधीन अविनाशी पद की प्राप्त करू।

ऋद्धिमद — धन-संपदा का घमंड करना ऋद्धिमद है। सम्यक दृष्टि धन-संपदा को अपने आत्म कल्याण के रास्ते में एक बड़ी रुकावट समझता है। इसे राग-द्वेष, भय, मोह, संताप शोक, क्लेश, वैर, हानि का प्रबल कारण समझता है। यह लक्ष्मी मनुष्य को मदोन्मत्त बनाने वाली है। वेश्या के समान चंचल है। इसका क्या पतियारा। आज नीच के घर है तो कल ऊँच के है। सम्यक् दृष्टि इस पराधीन विनाशक दुःख की कारण लक्ष्मी का गर्व नहीं करता, वह तो अपने आत्मा के अखंड ज्ञान को ही अपनी अटूट, स्वाधीन, अविनाशी लक्ष्मी जानता है और भावना करता है कि कब इस लक्ष्मी को त्याग, गृह जंजाल से छूट, निर्ग्रन्थ बन शिवलक्ष्मी को प्राप्त.

तप-मद—सम्यक् दृष्टि विचारता है, तप का मद कैसा ? तप का भी मद किया तो फिर तप क्यों किया—तप तो वहाँ है जहाँ क्रोध, मान, माया, लोभ नहीं, विकार परिणाम नहीं, आलस्य नहीं, प्रमाद नहीं। इच्छाओं के निरोध का नाम ही तप है, जब इच्छायें बनी रहीं तो तप कहाँ ? लालसा घटे नहीं, जीने की वांछा बनी रही, मरने से डरता है, हानि-लाभ में, स्तुति निंदा में ममता भाव हुआ नहीं फिर तप कैसा ? तप तो वहाँ है जहाँ आत्म ध्यान है, जहाँ शुद्धात्मा में तल्लीनता है—तप तो मेरे आत्म कल्याण का साधन है, इसका कैसा मान ? जहाँ गर्व है वहाँ कर्म-बंध है, जहाँ कर्म बँध है वहाँ आत्म विकास कैसा ? धन्य हैं वे महान पुरुष जिन्होंने तप करके कर्मों को क्षय किया और परम वीतरागता को प्राप्त किया।

रूप-मद—सम्यक् दृष्टि रूप का मद नहीं करता। रूप क्षण भंगुर है, पराधीन है, पुद्गल की पर्याय है, आत्मा का इससे क्या सम्बन्ध है, रूप का गर्व करना व्यर्थ है। सुन्दर रूप को पाकर व्यभिचारी न बनना, शील में दूषण नहीं लगाना, दीन-हीन दरिद्री, लगड़े-लूले अङ्गहीन, मलिन मनुष्यों को देख कर उनसे ग्लानि नहीं करना, उनका तिरस्कार नहीं करना, यह ही मेरा कर्तव्य है—ऐसा सम्यक् दृष्टि विचारता है—आज संसार में अपने आपको गोरी कहने वाली जातियाँ रूप के मद में मतवाली होरही है, उससे जो जो हानियाँ उनकी अपनी और अन्य जातियों की होरही हैं वे सब जानते हैं।

विद्यामद—जो ज्ञान इन्द्रियों के आधीन है, वात, पित्त, कफ के आधीन है, दिल दिमाग आदि के खराब हो जाने पर जो ज्ञान क्षण-मात्र में बिगड़ जाता है, उसका क्या गर्व करे। जो विद्या नाना प्रकार के घातक शस्त्रों द्वारा निर्दोष ग्राम, देश आदि के विध्वंस कर डालने में ही मनुष्यों को प्रवीण बनाती है, जो विद्या भोलेभाले जीवों को लूटने-मारने, प्राण हरने का पाठ पढ़ाती है, जो विद्या झूठे को सच्चा कर देने तथा सच्चे को झूठा कर देने में, दूसरों को बाधा पहुंचाने में, सताने में मनुष्यों को प्रवीण बनाती है, उसका क्या मान करें। यह विद्या संसार भ्रमण से हमें छुड़ा नहीं सकती, हमारे अधिक पतन का कारण होती है—ऐसा एक सम्यग् दृष्टि विचारता है। वह तो उस ज्ञान का पुजारी है जो उसकी आत्मा में भेद विज्ञान जाग्रत कर देवे, जो उसके हीन आचरण को छुड़ा उसे उसके आत्म कल्याण के सच्चे मार्ग पर लगा देवे, विषय कषाय से हटा परम समता की ओर ले जावे और संसार भ्रमण से छूटने में सहायक हो। जहाँ ऐसा ज्ञान होगा वहाँ मद नहीं होगा।

ऐश्वर्यमद—राज्यपद तथा हुकूमत का अभिमान करना ऐश्वर्य मद है—सम्यक दृष्टि ऐश्वर्य के नशे में चूर नहीं होता—ऐश्वर्य पाकर वह तो जीवों की सेवा तथा उपकार करना ही अपना कर्तव्य समझता है। वह विचारता है कि ऐश्वर्य पाकर निरभिमान रहना, बाधा रहित होना, न्याय करना, प्राणी मात्र से मैत्री भाव रखना, यथायोग्य छोटे बड़े सबका आदर-सत्कार करना

मेरा कर्तव्य है। दूसरे जीवों को दीन हीन पीड़ित देखकर तथा उनको कमजोर, धन हीन, बलहीन, जानकर उन पर जुल्म नहीं करता है, करुणा बुद्धि से उनके दुख-संकट दूर करने का प्रयत्न किया करता है। वह विचारता है यह ऐश्वर्य तो कर्माधीन है, क्षण भंगुर है, इसका क्या गर्व करूं ? मेरी अपनी आत्मा का ऐश्वर्य अविनाशी है, स्वाधीन है, अनंत शक्तिरूप है, मेरे लिये वही आदरणीय है। इन आठों मदों पर विचार करके इनका त्याग करना ही श्रेष्ठ है—किसी न किसी तरह प्रत्येक मनुष्य इनके जाल में फँस जाता है और अपने लिये संसार को बढ़ा लेता है—इनके फन्दे में न फंस कर मन पर अंकुश रखता तथा जीवन को सफल बनाता है।

प्रश्नावलि

(१) क्या सम्यक दृष्टि वास्तव में निर्मद होता है ? होता है तो क्यों ?

( ) मद के प्रकार का होता है ? मदों के नाम गिनाओ,

(३) कुल-मद और जाति मद से आप क्या समझते हैं ?

(४) एक धनाढ्य सेठ का पुत्र एक नीच कुल के मनुष्य को ठुकरा कर चलता है, क्या वह अच्छा करता है ? यदि वह सम्यक दृष्टि हो तो क्या करे ?

(५) बलमद से तुम क्या समझते हो ? एक बलवान लड़का अपने बल के कारण अपनी कक्षा के गरीब निर्बल लड़कों को सताता है, दूसरा बलवान लड़का उनको दुःखी देखकर उनकी

सहायता करता है और रक्षा करता है कौन सा अच्छा है ? मद कौन से के हैं ?

(६) ऋद्धिमद और तप मद किसे कहते हैं, उदाहरण देकर समझाओ।

(७) रूप मद किसे कहते हैं ? बहुत सी गोरे रंगवाली जातियाँ अपने देशों में अन्य काले रंगवाली जाति वालों को नहीं घुसने देतीं अथवा अपने समान अधिकार नहीं देतीं, उनके मद है या नहीं ? यदि है तो कौन सा मद है ?

(८) विद्या-मद किसे कहते हैं ? एक होशियार विद्यार्थी अपनी कक्षा के जरा कमजोर छात्रों से नाक भौं चढाता है। उनके साथ बैठना उठना पसन्द नहीं करता—क्या वह अच्छा करता है, उसके कौनसा मद है ?

(९) ऐश्वर्य मद से तुम क्या समझते हो ? एक आनरेरी मजिस्ट्रेट अपने गरीब पड़ौसी के मकान को अपने मकान में मिलाने के लिये बहुत कम क़ीमत पर अपने मजिस्ट्रेट होने का डर दिखा कर लेना चाहता है, क्या यह ठीक है ? उसके मद हैं या नहीं यदि है तो कौन सा ?

(१०) मान से क्या हानि होती है ?

मेरा कर्तव्य है। दूसरे जीवों को दीन हीन पीड़ित देखकर तथा उनको कमजोर, धन हीन, बलहीन, जानकर उन पर जुल्म नहीं करता है, करुणा बुद्धि से उनके दुख-संकट दूर करने का प्रयत्न किया करता है। वह विचारता है यह ऐश्वर्य तो कर्माधीन है, क्षण भंगुर है, इसका क्या गर्व करू ? मेरी अपनी आत्मा का ऐश्वर्य अविनाशी है, स्वाधीन है, अनंत शक्तिरूप है, मेरे लिये वही आदरणीय है। इन आठों मदो पर विचार करके इनका त्याग करना ही श्रेष्ठ है—किसी न किसी तरह प्रत्येक मनुष्य इनके जाल में फँस जाता है और अपने लिये ससार को बढ़ा लेता है—इनके फन्दे में न फस कर मन पर अकुश रखता तथा जीवन को सफल बनाता है।

प्रश्नावलि

—(१) क्या सम्यक दृष्टि वास्तव में निर्मद होता है ? होता है तो क्यों ?

( ) मद के प्रकार का होता है ? मदों के नाम गिनाओ,

(३) कुल-मद और जाति मद से आप क्या समझते हैं ?

(४) एक धनाढ्य सेठ का पुत्र एक नीच कुल के मनुष्य को ठुकरा कर चलता है, क्या वह अच्छा करता है ? यदि वह सम्यक दृष्टि हो तो क्या करे ?

(५) बलमद से तुम क्या समझते हो ? एक बलवान लड़का अपने बल के कारण अपनी कक्षा के गरीब निबल लड़कों को सताता है, दूसरा बलवान लड़का उनको दुखी देखकर उनकी

सहायता करता है और रक्षा करता है कौन सा अच्छा है ? मद कौन से के हैं ?

६—(६) बुद्धिमद और तप मद किसे कहते हैं, उदाहरण देकर समझाओ।

(७) रूप मद किसे कहते हैं ? बहुत सी गोरे रंगवाली जातियाँ अपने देशों में अन्य काले रंगवाली जाति वालों को नहीं घुसने देतीं अथवा अपने समान अधिकार नहीं देतीं, उनके मद है या नहीं ? यदि है तो कौन सा मद है ?

(८) विद्या-मद किसे कहते हैं ? एक होशियार विद्यार्थी अपनी कक्षा के जरा कमजोर छात्रों से नाक भौं चढ़ाता है। उनके साथ बैठना उठना पसन्द नहीं करता—क्या वह अच्छा करता है, उसके कौनसा मद है ?

(९) ऐश्वर्य मद से तुम क्या समझते हो ? एक आनरेरी मजिस्ट्रेट अपने गरीब पड़ोसी के मकान को अपने मकान में मिलाने के लिये बहुत कम कीमत पर अपने मजिस्ट्रेट होने का डर दिखा कर लेना चाहता है, क्या वह ठीक है ? उसके मद है या नहीं यदि है तो कौन सा ?

(१०) मान से क्या हानि होती है ?

तीन मूढता और छह अनायतन

वे सोचे समझे, बिना विचारे और परिक्षा किये बिना अन्धे की तरह लोगों के देखा देखी जिस प्रकार लोक में कोई प्रवृत्ति चलरही है, उसी के अनुसार कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र और कुधर्म को मानना, उनकी प्रशंसा करना मूढ़ता है। सम्यक्त्व इस प्रकार की मूढता में नहीं फँसता वह तो विचार और परीक्षा के साथही धर्म की बातों को मानता है। मूढतायें तीन हैं,—देव मूढता, लोक मूढता और गुरु मूढता।

देव मूढता—बिना विचारे लोगों की देखादेखी रागी द्वेषी देवों को मानकर पूजना और उनसे अपने संसारी कार्य की सिद्धि मानना। देव मूढता है

लोक मूढता—मिथ्या दृष्टियों की देखादेखी बिना विचारे ग्रहण में पुण्य मानना, कुँआ पूजना, पीपल पूजना, किसी नदी में स्नान कर लेने मात्र से मुक्ति हो जाना नाना रूप में पैसे की पूजा करना, दवात कलम बहीखाते का पूजना—बालू रेत का ढेर लगाकर या कंकरियों का ढेर लगाकर पूजना, पर्वत से गिरकर प्राण खोदेने में मुक्ति मानना, काशी करौत लेना, जलकर सती होने में धर्म मानना, इत्यादिक यह सब लोक मूढता के दृष्टान्त हैं। सम्यक दृष्टि इसप्रकार की कोई क्रिया नहीं करता वह तो। जोभी क्रिया करता है योग्य, अयोग्य-सत्य असत्य, हित अहित का विचार करके विवेक पूर्वक करता है,

गुरु मूढता—भयसे, लोभसे तथा आशासे रागी द्वेषी, कामी, दम्भी, इन्द्रिय विषय लंपटी वेषधारी पाखण्डी गुरुओं का मानना गुरु मूढता है। सम्यक दृष्टि ऐसे गुरु की भक्ति उपासना कभी नहीं करता, वह तो परम ज्ञानी, परम ध्यानी, तपस्वी निर्ग्रन्थ गुरुओं की ही भक्ति, पूजा, वैयावृत्य आदि किया करता है। सम्यक दृष्टि लोक प्रवृत्ति का कुछभी आश्रय नहीं लेता है, वह सब काम विचार पूर्वक ही किया करता है।

अनायतन—धर्म के आश्रय या स्थान को आयतन कहते हैं खोटे आश्रय को अनायतन कहते हैं। अनायतन छह हैं। "खोटे देव" 'खोटे गुरु" और "खोटे शास्त्र", "खोटे देव" का "श्रद्धान या सेवन करने वाला" "खोटे गुरु की भक्ति करने वाला" "और खोटे शास्त्र का पढ़ने वाला'। ये छह धर्म के आयतन नहीं हैं, अनयातन हैं। इनकी भक्ति से मोक्ष मार्ग की प्राप्ति नहीं होती, सम्यक्दृष्टि "तीन मूढता" "आठ मद" आठ शंका-दिक, "दोष छह अनायतन" इन पचीस दोषों को त्याग कर व्यवहार सम्यक दर्शन को धारण करके निश्चय सम्यक दर्शन को प्राप्त करता है। जिसके ऊपर लिखे पचीस दोष रहित शुद्ध आत्मा का श्रद्धान भाव होता है, उसी ही के नियम पूर्वक निश्चय सम्यक दर्शन होता है। जिसका व्यवहार सम्यक्त्व ही दूषित है उसके निश्चय सम्यक्त्व कैसे शुद्ध हो सकता है?

एक अविरत सम्यक्दृष्टि भी जहा तक उसका वश चलता है कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र, तथा कुधर्म को नमस्कार नहीं

अन्य व्यवहारियों का लौकिक रीति अनुसार यथायोग्य विनय, सत्कार जरूर करता है, यदि कोई उसपर जबरदस्ती जोरावरी करता है तो वह देश को छोड़ना, आजीविका को छोड़ देना, मन को त्याग देना इत्यादि बातो को तो स्वीकार लेता है परन्तु कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र तथा अन्य कुलिङ्गियो की आराधना वह कभी मंजूर नहीं करता व्रती श्रावकों का तथा साधु महाराज का तो कहना ही क्या है ?

प्रश्नावलि

(१) मूढता किसे कहते हैं ? मूढताएँ कितने प्रकार की होती हैं ?
(२) देव मूढताका स्वरूप उदाहरण देकर समझाइयेगा,
(३) गुरु मूढता क्या होती है। उदाहरण भी दो,
(४) लोक मूढता किसे कहते हैं उदाहरण देकर समझाओ,
(५) अनायतन से क्या समझते हो ? अनायतन कितने होते हैं ? उनके नाम बताओ ?
(६) अनायतन की भक्ति से क्या हानि होती है ?
(७) सम्यक्त्व के २५ दोष कौन हैं उनके नाम बताओ ?

सम्यक् दृष्टि के बाहरी चिन्ह और विशेष गुण

सम्यक्-दृष्टि के नीचे लिखे आठ बाहरी गुण प्रगट होते हैं —

(१) संवेग—सम्यक् दृष्टि के धर्म में अनुराग होता है। वह अन्याय के विषय शृंगार, विकथाओं में, पापमय संगति में, स्त्री, पुत्र, धन, आदिक में अनुराग नहीं करता—उसको तो दशलक्षण धर्म में, धर्मात्मा पुरुषों की संगति में, धर्म-कथा में और धर्मायतनों में प्रेम होता है।

(२) निर्वेदः—सम्यक् दृष्टि संसार, शरीर और भोगों से स्वभाव से ही विरक्त होता है। वैराग्य तथा उसके साधनों से उसे बड़ा प्रेम होता है, वह धर्म प्रेम में ही रंगा रहता है।

(३) आत्म-निन्दा—मनुष्य जन्म पाना कठिन है, यदि एक क्षण भी मेरे जीवन की धर्म साधन बिना जाता है तो बड़ा अनर्थ है, ऐसा एक सम्यक् दृष्टि विचारता है। यदि किसी समय उसको प्रमाद आजाता है या उसके परिणाम अध्यम रूप होजाते हैं तो वह अपने दोष को विचार कर अपनी निन्दा करता है।

(४) गर्हा—यदि किसी सम्यक् दृष्टि से कोई खोटा आचरण होजाता है या उसे कोई दोष लग जाता है तो वह गुरु या

(४) उपशम, भक्ति, वात्सल्य और अनुकम्पा इन चारों से आप क्या समझते हैं ?

(५) सम्यक् दृष्टि के विशेष गुणों का वर्णन सँक्षेप से करो।

सम्यक् दर्शन की महिमा

सम्यक् दर्शन की अपूर्व महिमा है, सम्यक् दृष्टि सदा सन्तोषी रहता है, सम्यक्-दृष्टि यदि चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से व्रत उपवास थोड़े भी न कर सकें तो भी उन सम्यक् दृष्टियों कि इन्द्र पूजा करते हैं। यद्यपि वे गृहस्थी हैं परन्तु वे घर में रहते हुए भी घर से जुदा हैं, घर में नहीं रहते,-घर के मोह में नहीं फँसे हुए हैं—जैसे जल के अन्दर जन्म लेने वाला, उसी में रहनेवाला कमल उससे अलग रहता है, जैसे कीचड़ में पड़ा हुआ सोना भी निर्मल रहता है, वैसे ही गृहस्थी सम्यक् दृष्टि भी निर्मल रहते हैं। सम्यक्-दृष्टि मर कर पहले नर्क के सिवाय बाकी छह नर्कों में, ज्योतिषी, व्यन्तर, भवन वासी देवों में नपुसकों और स्त्रियों मे, स्थावर एकेन्द्रिय में, दो इन्द्रिय में तीन इन्द्रिय चौरिन्द्रिय विकलत्रय और पशुओं में जन्म नहीं लेता, चाँडाल माता पितासे उत्पन्न एक चाँडाल भी यदि सम्यक्-दर्शन सहित है तो उसे भगवान गणधर देव "देव" ही कहते हैं। पूना

गुणोंकी है, नकि शरीर की। शरीर की पूजा कौन करता है? कौन ज्ञानी इससे राग करता है? कौन इसकी पूजा व दना करता है, यह तो सम्यक्-दर्शन गुण के प्रगट होने पर वदने तथा पूजने योग्य होता है। धर्म के प्रभाव से एक कुत्ता भी मर कर स्वर्ग में जाकर देव हो जाता है और पाप के निमित्त से स्वर्ग का महाऋद्धिधारी देव भी पृथ्वी पर आकर कुत्ता हो जाता है। ऐसी सम्यक् दर्शन की महिमा है। सम्यक्-दर्शन, ज्ञान और चारित्र से बढ़कर है। क्यों कि सम्यक्-दर्शन रत्न त्रय रूप मोक्षमार्ग में सबसे प्रधान मानागया है। जसे समुद्र में जहाज को समुद्र के पार ले जाने में एक अच्छा खेवटिया ही दक्ष और समर्थ होता है, वैसे ही संसार समुद्र में से रत्नत्रय रूप जहाज को पार लेजाने के लिये सम्यक् दर्शन ही एक समर्थ खेवटिया है। रत्नत्रय में सम्यक् दर्शन ही सबसे श्रेष्ठ है। सम्यक् दर्शन ही ज्ञान चरित्र का बीज है, यम और शांतभावका जीवन है, तप और स्वध्यायका आधार है। जिसके निर्मल सम्याक् दर्शन प्राप्त होगया वह बड़ा पुण्यात्मा है, मानों मुक्त रूप ही है, क्योंकि मोक्ष के प्रधान कारण ये ही हैं। वास्तव में प्राणियों के लिये सम्यक्-दर्शन जैसा तीन काल और तीन लोकमें और कोई कल्याणकारी नहीं है और मिथ्यात्व जैसा अहकार करने वाला तीन लोक में और तीन कालमें कोई भी द्रव्य चेतन या अचेतन न हुआ है, न है और न होगा। सम्यक्-दर्शन से पवित्र पुरुष मनुष्यों का तिलक होता है। सम्यक् दृष्टि ही पराक्रम, प्रताप, विजय, शक्ति,

गुणों का स्वामी होता है। महान धम, महान अर्थ, महान काम महान मोक्षरूप चारो पुरुषार्थोका स्वामी होता है। सम्यक-दर्शन के प्रभाव से मनुष्य महाऋद्धि का धारक देव तथा चक्रवर्ती होता है। सम्यक-दर्शन कीही बदौलत एक जीव देवेन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती तथा गणधर देवों द्वारा पूज्य तीर्थंकर पदको प्राप्त होता है। सम्यक-दर्शन का धनी ही मोक्ष के अद्वितीय, अजर अमर, अविनाशी सुखको प्राप्त होता है। इस प्रकार सम्यक-दर्शन की महिमा को जान कर अन्य जीवों को सम्यक दर्शन रूप अमृत का ही पान करना योग्य है। सम्यक-दर्शन अनुपम अतीन्द्रिय सहज सुखका भंडार है, सब कल्याण का बीज है, संसार समुद्र से पार करने के लिये जहाज के समान है, भव्य जीव ही इसको पा सकते हैं, यह पापरूपी वृक्ष के काटने को कुठार है। पवित्र तीर्थों में यही प्रधान है और मिथ्यात्व का शत्रु है।

प्रश्नावली

(१) गृहस्थी सम्यक-दृष्टि गृहस्थ में रहते हुए भी निर्मल है, दृष्टान्त देकर समझाओ।

(२) सम्यक्-दृष्टि मर कर कहा कहा जन्म नहीं लेता ?

(३) रत्नत्रयमें सम्यक-दर्शन को सबसे मुख्य और श्रेष्ठ क्यो माना गया है ?

(४) संसार में जीव के लिये सबसे श्रेष्ठ कल्याणकारी वस्तु क्या है ? और सबसे ज्यादा हानिकारक कौन है ?

(५) एक सम्यक्दृष्टि चाण्डाल भी देवों कर पूजनीक होता है, इस सम्बन्ध में कोई कथा याद होतो सुनाओ।

(६) सम्यग्-दर्शन की विशेष महिमा अपने शब्दों में वर्णन करो।

(७) सम्यक्-दर्शन का फल क्या होता है ?

प्रेम भावना

(ज्योतिप्रसाद)

सर्वज्ञ देव तुमसे, मेरी यह इल्तजा है।
संसार गहन वन में, जो दुख भरा हुआ है॥
उस दुख को मेटने की, गुण ज्ञान जो दवा है।
वह हाथ में हो मेरे, यह मेरी भावना है।
मैं उस दवा से मेटूँ, दुख जग के प्राणियों का
और भ्रम सभी मिटादूँ, दिल से अज्ञानियों का ॥१॥

रह कर के ब्रह्मचारी, विद्या करूँ मैं हासिल।
आलिम बनूँ मैं पूरा, हरएक फन में कामिल।
होकर धरम का माहिर, हर इक अमल का आमिल।
चक्खूँ चखाऊँ सबको, गुण ज्ञान के सरस फल॥
रक्षा करूँ मैं अपने, बलवीर्य की निभा कर।
सेवा करूँ धरम की, जिस्म और जाँ गवाकर ॥२॥

अर्जुन सा बल होमुझ में, और भीम सी हो ताक़त।
अकलंक सी हो हिम्मत, निकलंक सी शुजाअत।
श्रीपाल जैसी धिरता, और राम जैसी इज्ज़त।

गुणो का स्वामी होता है। महान धम, महान अर्थ, महान काम महान मोक्षरूप चारो पुरुषार्थोका स्वामी होता है। सम्यक-दर्शन के प्रभाव से मनुष्य महारिद्धि का धारक देव तथा चक्रवर्ती होता है। सम्यक-दर्शन की ही बदौलत एक जीव देवेन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती तथा गणधर देवों द्वारा पूज्य तीर्थंकर पदको प्राप्त होता है। सम्यक-दर्शन का धनी ही मोक्ष के अद्वितीय, अजर अमर, अविनाशी सुखको प्राप्त होता है। इस प्रकार सम्यक-दर्शन की महिमा को जान कर भव्य जीवों को सम्यक दर्शन रूप अमृत का ही पान करना योग्य है। सम्यक-दर्शन अनुपम अतीन्द्रिय सहज सुखका भंडार है, सर्व कल्याण का बीज है, ससार समुद्र से पार करने के लिये जहाज के समान है, भव्य जीव ही इसको पा सकते हैं, यह पापरूपी वृक्ष के काटने को कुठार है। पवित्र तीर्थों में यही प्रधान है और मिथ्यात्व का शत्रु है।

प्रश्नावली

(१) गृहस्थी सम्यक-दृष्टि गृहस्थ मे रहता हुए भी निर्मल है, दृष्टान्त देकर समझाओ।

(२) सम्यक्-दृष्टि मर कर कहा कहा जन्म नहीं होता ?

(३) रत्नत्रयमे सम्यक-दर्शन को सबसे मुख्य और श्रेष्ठ क्यो माना गया है ?

(४) ससार में जीव के लिये सबसे श्रेष्ठ कल्याणकारी वस्तु क्या है ? और सबसे ज्यादा हानिकारक कौन है ?

(५) एक सम्यक्दृष्टि चाण्डाल भी देवों कर पूजनीक होता है, इस सम्बन्ध में कोई क्या याद होतो सुनाओ।

(६) सम्यक्-दर्शन की विशेष महिमा अपने शब्दों में वर्णन करो।

(७) सम्यक्-दर्शन का फल क्या होता है?

प्रेम भावना

(ज्योतिप्रसाद)

सर्वज्ञ देव तुमसे, मेरी यह इल्तजा है।
संसार गहन वन में, जो दुख भरा हुआ है॥
उस दुख को मेटने की, गुण ज्ञान जो दवा है।
वह हाथ में हो मेरे, यह मेरी भावना है।
मैं उस दवा से मेटूँ, दुख जग के प्राणियों का
और भ्रम सभी मिटादूं, दिल से अज्ञानियों का॥१॥
रह कर के ब्रह्मचारी, विद्या करूं मैं हासिल।
आलिम बनूं मैं पूरा हरएक फन में कामिल।
होकर धरम का माहिर, हर इक अमल का आमिल।
चक्खूं चखाऊं सबको, गुण ज्ञान के सरस फल॥
रक्षा करूं मैं अपने, बलवीर्य की निभा कर।
सेवा करूं धरम की, जिस्म और जाँ गंवाकर॥२॥
अर्जुन सा बल होमुझ में, और भीम सी हो ताक़त।
अकलंक सी हो हिम्मत, निकलंक सी शुजाअत।
श्रीपाल जैसी थिरता, और राम जैसी इज़्ज़त।

विष्णु सा प्रेम मुझ में, लक्ष्मण सी हो मुहब्बत ॥
श्रेयांस जैसी मुझ में, हाँ दान वीरता हो।
सुखमाल जैसी मुझ में, हाँ ध्यान वीरता हो ॥३॥
सादा लिबास हो मेरी, सादा चलन हो मेरा,
मैं हूँ वतन का प्यारा, प्यारा वतन हो मेरा
सच्चा वचन हो मेरा, सच्चा परण हो मेरा,
आदर्श जिन्दगी हो उत्तम भजन हो मेरा।
दुनियाँ के प्राणियों से ऐसा मेरा निबाह हो,
मुझ को भी उनकी चाह हो उनको भी मेरी चाह हो॥४॥
दुनिया के बीच करदूं, गुण ज्ञान का उजेरा,
और दूर सब भगादूं, अज्ञान का अंधेरा।
हर एक का मैं करदूं, आराम स बसेरा,
मेटूं दिलों से सब के, यह शब्द मेरा तेरा।
मैं सब को एक कर दूं, आतम का रस पिलाकर।
बाणी पवित्र सब को, महावीर की सुनाकर ॥ ५ ॥
भूलों को राह बतादूं, हमराह खुद मैं आकर,
गिरतों को मैं उठादूं, हाथों में हाथ लाकर
डूबे हुए बचादूं, गोते मैं खुद लगाकर,
सोतों को मैं जगादूं, आवाज दे दिलाकर॥
बिछड़ों को मैं मिलादूं, हा प्रेम राग गाकर।
मुर्दों को मैं जिलादूं, रस प्रेम का पिलाकर॥६॥
घर घर म जाके बाँटूं, मं प्रेम की मिठाई।
विद्या की रोशनी से, देने लगे दिखाई।

दिल में हों प्रेम सब के, सब होवें भाई भाई।
होने लगे हर इक के, दुख में हर इक सहाई।
"ज्योति" में यह करूंगा, तन मन लगा के अपना।
सेवा करूंगा सब की, सब कुछ गवा के अपना ॥७॥

शब्दार्थ

१ इल्तजा—प्रार्थना	५ आमिल—करने वाला
२ आलिम—विद्वान	६ वतन—मातृ भूमि
३ कामिल—पारगामी	७ हमराह—साथ
४ माहिर—आचार्य	८ गिजा—भोजन, आहार

प्रश्नावलि

१—इस कविता के रचने वाले कौन हैं? उनके सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं?

२—इस कविता में कवि ने जो विचार प्रगट किये हैं, अपनी सरल भाषा में उनका वर्णन करो—

३—इस कविता का जो छन्द आपको याद हो और प्यारा लगता हो, जबानी सुनाओ।

४—तीसरे छन्द का अर्थ समझाओ और उसमें जिन महात्माओं का नाम है किसी दो का हाल बताओ,

वीर शिरोमणि चामुण्डराय

संसार में सत्यवादी, परोपकारी, भक्त, कवि, विद्वान, शिल्प के जानने वाले, योद्धा, धर्मज्ञ और दानवीर बहुत हो चुके हैं और

होते रहेंगे, परन्तु ऊपर लिखे सब गुण एकही व्यक्ति में पाया जाना आश्चर्यजनक और कठिन सी बात है। ऐसे बहुत ही कम व्यक्ति देखने और सुनने में आए हैं, परन्तु जैन समाज में वीर शिरोमणि चामुण्डराय ऐसे सब ही गुणों के धारक व्यक्ति हो चुके हैं। इन्होंने संसार में जन्म लेकर अपने कर्तव्य का पूरा पूरा पालन किया और केवल जैन समाज ही नहीं किन्तु सारे संसार के लिये आगामी काल में एक सद्गृहस्थ का आदर्श बनाकर छोड़ गये हैं। ऐसे नर रत्न का नाम जैन इतिहास में सुनहरी अक्षरों में अंकित रहेगा।

कर्तव्य पालन करना जान जोखो का काम है। देश-सेवा और धर्म के कारण अपने आपकी आहुति देना जीवन का रहस्य है। खाना पीना, मौज उड़ाना यह तो पशुओं में भी पाया जाता है। एक कर्तव्य का पालन ही मनुष्य में विशेषता रखता है। यदि यह विशेषता न हो तो मनुष्य और पशु में कोई अन्तर नहीं है।

द्रव्य दान देने वाले बहुत हैं, परन्तु जननी और जन्म भूमि की सेवा में अपने आपको बलिदान करने वाले बहुत कम व्यक्ति होते हैं। वीर चामुण्डराय का जीवन ऐसी २ बातों से भरा हुआ है। जैन धर्मानुयायी गंग वंश मैसूर प्रान्त में सन् १०३ ई० से सन् १००४ तक बराबर राज्य करता रहा। इस ही कुल में एक राजा राचमल्ल द्वितीय (९७४—९८४) हुए हैं। वीर शिरोमणि चामुण्डराय इन्हीं राजा राचमल्ल के मंत्री व सेनापति थे।

राजा चामुण्डराय ब्रह्मक्षत्र वंश में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम और जन्म दिन अभी तक ज्ञात नहीं हुआ है। इनकी माता का नाम कलल देवी और स्त्री का नाम अजितादेवी था। श्री अजितसेनाचार्य और श्री नेमिचन्द्राचार्य सिद्धान्त चक्रवर्ती इनके गुरु थे।

चामुण्डराय की माता जैन धर्म से बड़ा प्रेम रखती थी, जिससे पता चलता है कि चामुण्डराय के पूर्वज भी जैन धर्म के अनुयायी होंगे। वीर चामुण्डराय राजा राचमल्ल के मन्त्री होते हुए भी जिस ढंग से कार्य करते थे वह लेखनी से बाहर है। इतिहास तथा प्राचीन शिलालेखों से पता चलता है कि उनके मन्त्रित्व-काल में गंगवाड़ी (मैसूर) में विद्या, कला, शिल्प और व्यापार की अति वृद्धि थी। प्रजा सुखी और मालामाल थी।

उस समय राष्ट्रकूट राजाओं की चलती थी, चामुण्डराय ने गंगा राजाओं से उनकी मैत्री करा दी। जिन राजाओं से मैत्री की, उन को लड़ाई में बड़ी सहायता दी और उनके लिए लड़ाइयाँ लड़कर उन्हें गंग वंश का चिरऋणी बना दिया। इससे प्रगट है कि चामुण्डराय राज नीति में बड़े निपुण थे। वे केवल राजनीतिज्ञ ही नहीं थे, किन्तु बड़े योद्धा भी थे। शस्त्र विद्या में बड़े प्रवीण और निपुण थे। इस शस्त्र विद्या का ज्ञान उन्हें आयसेन आचार्य द्वारा प्राप्त हुआ था। परोपकार के लिये युद्ध करना एक गृहस्थ का कर्तव्य है। राजा चामुण्डराय ने अपने इस कर्तव्य का पालन खूब अच्छी रीति से किया। ... में प्राण देने से नहीं डरते थे। उन्होंने खड्ग

ड़ाइयों में बड़ी वीरता दिखाई और विजय पाई। कितने
कलों को जीत कर उन पर अपना अधिकार किया। कितने
ड़े बड़े राजाओं को पराजित करके उनके अपराध का उन
उचित दण्ड दिया। इसी प्रकार के अनेक वीरता के कार्यों
कारण ही उन्हें बहुत सी उपाधियाँ प्राप्त हुईं। वे समर धुरन्
वीर, मार्तण्ड, रणरङ्गसिंह, वैरी कुल काल दण्ड, भुज विक्रम,
दृढ़ राम, समर परशुराम, भटमारि, सुभट-चूड़ामणि,
शिरोमणि आदि कितनी ही उपाधियों से विभूषित थे।

राजा चामुण्डराय केवल योद्धा ही नहीं थे, वे बड़े वि
भी थे। साहित्य और कविता खूब अच्छी तरह जानते
संस्कृत, प्राकृत, कनड़ी भाषा के पूर्ण विद्वान थे। उन्होंने स
में चारित्रसार ग्रन्थ रचा। कनड़ी भाषा में चामुण्डराय पु
की रचना की। श्री नेमिचन्द्राचार्य सिद्धान्त चक्रवर्ती ने
राजा चामुण्डराय की प्रार्थना पर गोम्मटसार प्राकृत ग्रन्थ
रचना की तो चामुण्डराय कनड़ी भाषा में साथ २ उसका
वाद करते जाते थे। इसी टीका के आधार पर केशव व
संस्कृत टीका बनाई। इससे यह बिलकुल साफ हो जाता है
चामुण्डराय शास्त्र के उच्चकोटि के ज्ञाता और कवि थे।

चामुण्डराय श्रावक भी पक्के थे, वह श्रावक धर्म का
रीति से पालन करते थे। सदैव सत्य बोलते थे, इसी लि
'सत्य युधिष्ठिर' कहलाते थे। धर्म कार्यों में उनकी रुचि
बनी रहती थी। अपने बनाये चारित्रसार में वीर चामुण
ने मुनि धर्म और श्रावक धर्म दोनों का पूर्णरीति से वर्णन

है, इससे ज्ञान पड़ता है कि वह श्रावकाचार के पालने वाले थे। इसी कारण वह 'सम्यक् रत्नाकर' कहलाते थे।

जबतक 'श्रवणबेलगोल' में भगवान गोमट्टस्वामी की मूर्ति स्थापित है, तबतक चामुण्डराय का नाम लोक में प्रसिद्ध रहेगा। यह पाषाण की खड्गासन मूर्त्ति ५७ फुट ऊँची है। बड़ी मनोहर और दर्शनीय है। कारीगरी खतम की हुई है। देश विदेशों से बड़े यात्री इस विशाल मूर्त्ति को देखने आते हैं। बहुत से कहते हैं कि राजा चामुण्डराय ने बहुत धन खर्च करके इस मूर्ति को बनवाया था, बहुत से कहते हैं कि यह मूर्ति बहुत पुरानी है, चामुण्डराय ने इसे पृथ्वी में निकलकर फिर से स्थापित कराया था। चाहे कुछ भी हो चामुण्डराय का विशाल मूर्ति से बड़ा भारी सम्बन्ध है। राजा चामुण्डराय ने इस विशाल मूर्ति की बहुत रुपया खर्च करके प्रतिष्ठा कराई थी। इस मूर्ति की पूजा और रक्षा के लिये बहुत से गाँव इसके सम्बन्ध में लगा दिये। 'श्रवण बेल-गोल' नगर में एक मठ जिसके मठाधीश श्री नेमिचन्द्र जी सिद्धान्त चक्रवर्ति हुए, स्थापित किया।

चामुण्डराय ने जाति और देश सेवा के बहुत से शुभ कार्य किये। धर्म कार्य के लिये वह हर समय तय्यार रहते थे। उन्हो ने बहुत से जिन मन्दिर बनवाये, शास्त्र लिखवाये, बहुत सी पाठ शालाएँ स्थापित की जिनमे न केवल धर्म की ही, परन्तु शिल्प-शास्त्र, ज्योतिष विद्या आदि सर्व ही विद्याएँ सिखाई जाती थीं।

यद्यपि राजा चामुण्डराय इस समय समाज में नहीं हैं किन्तु उनके जीवन चरित्र की घटनायें देखी जावें तो वे अभी तक

संसार में जाहिर हैं। उनका जीवन चरित्र श्रावकों के लिये बड़ा शिक्षाप्रद और एक आदर्श गृहस्थ, धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थ के पालने वाले का प्रमाण है। उनके जीवन से हमें शिक्षा लेनी चाहिए कि गृहस्थ के लिये धर्मार्थ शस्त्र धारण करना कोई पाप नहीं है, शस्त्र धारण करने से मनुष्य धर्मच्युत नहीं कहा जा सकता। चामुण्डराय सेनापति होकर भी अणुव्रति सम्यक् दृष्टि गृहस्थ थे। ऐसा जानकर है उनका चरित्र पढ़कर हमें चाहिये कि कायरता छोड़ें, वीरता का भाव अपने में जागृत करें। व्यायाम कर तथा शास्त्र विद्या का अभ्यास कर अपने पूर्ण बल और पौरुष को और अद्भुत लौकिक व पारमार्थिक कार्यों को करने के लिये अपने को शक्तिशाली और साहसी बनावें।

प्रश्नावलि

(१) वीर शिरोमणि चामुण्डराय का जन्म किस देश और किस कुल में हुआ ?

(२) क्या उनके माता पिता का नाम बता सकते हो ? उनके धर्म-गुरु कौन थे ?

(३) चामुण्डराय अपने किन २ गुणों के कारण प्रसिद्ध हुए ?

(४) चामुण्डराय ने ऐसा कौन सा कार्य किया जिसके कारण आज तक उनका यश गाया जाता है ?

(५) चामुण्डराय ने कौन २ से ग्रन्थ लिखे ?

(६) चामुण्डराय के जीवन से क्या २ शिक्षायें मिलती हैं ?

रानी चेलना (अ)

मनहर मडप है। उसमें उच्च सिंहासन पर भव्याकृति भगवान महावीर विराजमान हैं, वे भव भय भीत प्राणियो को संसार सागर से पार होने का उपदेश दे रहे हैं।

उसी समय राजगृही का राजा श्रेणिक प्रभु का उपदेश सुनने आया। साथ में उसकी पत्नी धर्म प्राणा चेलना भी थी। उन्हें न किसी ने कहा "आइये न किसी ने उठकर उन्हें आगे की जगह ही बैठने को दी। वहाँ राजा प्रजा में कोई भेद न था।

जब लोग उपदेशामृत पान करके लौटे, सूर्य ढल चुका था सर्दी पड़ रही थी, ठंडी हवा आ २ कर तीर की तरह शरीर में प्रवेश कर रही थी। इससे लोग सीत्कार करते जल्दी २ अपने घरों की ओर चले जारहे थे। पक्षी अपने घोसलों की ओर दौड़ रहे थे और पशु अपने सुरक्षित स्थान में पहुचने के विचार से भागे जारहे थे।

राजा श्रेणिक और रानी चेलना की सवारियाँ एक वृक्ष के नीचे खड़ी हुई। उन्हें मालूम हुआ कि यहाँ से थोड़ी दूर पर घने जंगल में नदी के तट पर एक शिला है उस पर कोई मुनि ध्यान मगन बैठा है।

राजा और रानी सवारियों से उतर कर नदी किनारे पहुंचे। एक लबी चौड़ी शिला पर मुनिराज पद्मासन लगाये बैठे हैं। कल कल कर बहती हुई नदी का पानी सरदी के मारे धीरे २ जमता जारहा है। आसपास के वृक्ष सरदी की अधिकता से

जल कर सूखे जारहे हैं। हवा बेरोक जहाँ चाहती है वहाँ जाती है, कोई उसे रोकने वाला नहीं है। ऐसी परिस्थिति में भी मुनिराज नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि जमाये बैठे हैं। शरीर पर कोई वस्त्र नहीं है। दिशाओं के सिवाय उनके शरीर को ढकने का कोई साधन नहीं है। वे स्थिर हैं उनके श्वासोच्छ्वास की गति इतना मंद है कि कठिनता से उनकी सचेतना जान पड़ती है। भक्त वृन्द नीचे लिखा हुआ पद गा गा कर मुनिराज की स्तुति कर रहे हैं —

जब शीत काल तुषार में, दाहे सकल वनराय।
जब जमहिं पानी पोखरा थहरहिं सबकी काय॥
तिस काल मुनिवर तप तपें, ठाढ़े नदी तट तीर।
वे साधु मेरे मन बसो, मेरी हरो पातक पीर॥

राजा रानी ने भक्ति भाव से मुनिराज की वंदना की। रानी चेलना का हृदय इस कठोर तप को देख कर काँप उठा।

सजे सजाये कमरे में राजा और रानी चेलना गरम गद्दी पर लिहाफों में लिपटे लिपटाये पड़े हैं। चारों तरफ से दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द हैं। वहाँ कठिनता से ठंडी हवा उसमें आ जा सकती है, परन्तु इतनी सी हवा के मारे भी वे अपने शरीर के किसी भी भाग को लिहाफ के बाहर निकालने में असमर्थ हैं।

नींद की बेहोशी में रानी चेलना [illegible] सयों के लिये लिहाफ से बाहर निकल गई [illegible] और सीत्कार कर अपना

उसे मुनिराज का ख्याल आया। जिस परिस्थिति में वे बैठे थे, उसकी तस्वीर उसकी आँखों में घुस गई। उसका हृदय दया से परिपूर्ण हो गया। उसके मुख से निश्वास के साथ सहसा शब्द निकल पड़े, अरे ! उन विचारों की क्या गति होगी ? भगवान उनकी रक्षा करें।"

दैव-योग से राजा श्रेणिक भी उस समय जाग गया था। उसके कानों में रानी के ये शब्द पड़े। मनुष्य का पापी मन सदा शंकाओं से परिपूर्ण रहता है। उसे शंका हुई "हो न हो रानी का किसी पुरुष से सम्बन्ध है, जान पड़ता है वह मामूली आदमी है। उसके सर्दी से बचने के साधन नहीं हैं, इसी लिये रानी को उसकी चिन्ता हो रही है। अरेरे ! स्त्रियाँ कितनी दुश्चरित्रा होती हैं। मेरी रानी चेलना धर्म प्राणा है, वह भी जब चारित्र हीन है, तब और रानियों की तो बात ही क्या है ?"

इधर राजा इस तरह के विचार कर रहा था, उधर रानी चेलना अपने मन में मुनिराज के तप-त्याग का विचार करती हुई लिहाफ को चारों तरफ से अपने नीचे दबा रही थी और सर्दी से बचने का उपाय कर रही थी।

आज श्रेणिक का मन किसी काम में नहीं लग रहा है, वह बेचैनी के साथ इधर उधर टहल रहा है, उसके हृदय में तूफान उठ रहा है, वह क्या करे ? कैसे इन दुश्चरित्रा रानियों से अपना पीछा छुड़ाये ? कैसे वह अन्तःपुर की पवित्रता को सुरक्षित रखे।

टहलता टहलता वह अचानक खड़ा हो गया,"

को बुलाया। नौकर हाथ जोड़कर सामने आ खड़ा हुआ। हुक्म दिया "जाओ अभयकुमार मंत्री को इसी समय बुला लाओ।"

मंत्री अभयकुमार चुपचाप आया और अभिवादन कर सामने खड़ा होगया। उसने देखा कि राजा की आँखें क्रोध के मारे लाल हो रही हैं। उसी की आकृति उसके हृदय के भयंकर विचार प्रगट कर रही है। राजा टहलता हुआ खड़ा हो गया और बोला "मंत्री !"

मंत्री ने हाथ जोड़ सिर झुका बड़े ही कोमल स्वर में कहा "अन्नदाता !" राजा को यह कोमल स्वर अच्छा न लगा, उसने कहा "इसी समय सारा अन्त पुर जलकर खाक हो जावे "

अभयकुमार का दयालु हृदय काँप उठा। उसने काँपती आवाज में कहा "अन्नदाता की जैसी आज्ञा ! पर "राजा गर्जा, "पर वर कुछ नहीं। इसी समय हुक्म की तामील होवे जाओ !"

मंत्री खिन्न हृदय के साथ रवाना हुआ। राजा ने पुन उसे बुलाया और कहा "चेलना रानी "राजा कहता २ रुक गया। फिर बोला, "जाओ कोई स्त्री जो अन्त पुर में है जोवित न रहने पावे। मैं भगवान महावीर के दर्शन को जाता हूँ। मेरे वापिस लौटने पर मुझे अन्त पुर की राख दिखाई देवे। खबरदार कोई बचने न पावे।"

प्रश्नावलि

(१) यशोधर मुनि की परिस्थिति का वर्णन अपने शब्दों में करो।

(२) भक्त-जन कौनसा छन्द पढ़ रहे थे?

(३) राजा श्रेणिक को चेलना के शील में क्यों और कैसे सन्देह हुआ?

(४) राजा श्रेणिक ने अपने मंत्री अभयकुमार को बुलाकर क्या आज्ञा की?

रानी चेलना (आ)

बुद्धिमान मंत्री अभयकुमार राजा श्रेणिक की कठोर आज्ञा को सुनकर बड़ा फिकर में पड़ा। वह क्या करे? राजा की आज्ञा उसे अन्याय मालूम हो रही थी। वह समझ रहा था कि किसी एक के अपराध में सारी रानियाँ निरपराध मारी जा रही हैं। पर अपराधी का पता लगाना भी तो कठिन था।

अन्त में उसने निश्चित किया कि रात को राजा जिस रानी के महल में रहे हों वहां चल कर इसका पता लगाना चाहिये।

तलाश करने पर मालूम हुआ कि राजा रात को रानी चेलना के महल में थे। चेलना का नाम सुनकर मंत्री को विश्वास हो गया कि राजा को कोई भारी भ्रम होगया है और उसी के कारण राजा ने ऐसी भयंकर आज्ञा दी है। रानी चेलना कोई

अपराध नहीं कर सकती, तो भी इसकी जांच तो होनी ही चाहिये।

मंत्री रानी चेलना के पास गया और बड़े ही विनय पूर्ण स्वर में बोला "माता। आज राजाधिराज क्रुद्ध मालूम होते हैं, क्या आपको इसका कोई कारण मालूम है। राजा के क्रोध की बात सुनकर रानी का मन उद्विग्न हुआ। उसने गत-रात्रि की सारी बातें एक एक करके याद कीं और कहा "रात को ऐसी कोई बात नहीं हुई जिसमे महाराज नाराज होते।"

अभयकुमार बोला "मा क्या आप मुझे रात को सारी बातें सुनाने की कृपा करेंगी?"

रानी की त्योरियों में बल पड़ गया। मंत्री समझ गया। वह मधु से भी मीठे शब्दों में बोला "मा नाराज न हो। मुझे महाराज ने आज्ञा दी है कि मैं सारे अन्त पुर को रानियों सहित जलाकर भस्म करदूं। मैं समझता [illegible] कि यह अन्याय है। फिर भी मैं उनका आज्ञा पालक सेवक [illegible]। इस लिये आज्ञा पालना ही मेरा कर्तव्य है। पर माता, मैं पुत्र भी हूं जैसे मेरे लिये पिता की—राजा की आज्ञा मानना कर्तव्य है वैसे ही अपनी माताओं की रक्षा करना भी मेरा कर्तव्य है। मुझे पूरा विश्वास है कि राजा को कोई भ्रांति हुई है और उसीके वश हो कर उन्होंने ऐसी आज्ञा दी है।

रानी चेलना बोली "अभय। तुम मेरा महल सुलगाओ। रातको यदि कोई अपराध हुआ होगा तो वह मुझसे या मेरे ही महल में रहने वाली किसी से। इससे तुम न्याय-युक्त काम

करो। महाराज यह जान कर तुम पर प्रसन्न होंगे कि तुमने अपराधी को दंड दिया है।"

यह कहकर रानी "अर्हंत अर्हन्त" बोलने लगी। मंत्री विचार में पड़ा। कुछ देर बाद बोला "माता क्या आप —

रानी बड़े स्नेहयुक्त स्वर में बोली "जाओ वत्स अपना कर्त्तव्य करो। महाराज कभी अन्याय-मूलक आज्ञा नहीं देते। संभव है मैं अतिमद अपराध करके भी उसे नहीं समझ सकी हूँगी। वे तो हमारे पूज्य हैं, स्वामी हैं। अपनी दासी को दंड देने का हुक्म देते समय संभवतः भूल से सारा अन्त पुर शब्द उनके मुँह से निकल पड़ा होगा, या तुमने ही भ्रान्ति वश सारा अंतःपुर समझ लिया होगा। जाओ महाराज की प्रिय रानी का हुक्म है कि चेलना के सिवाय किसी रानी का महल न जलाया जावे।"

"माता!"

"बस अभयकुमार! अब अधिक समय न लो। मुझे भगवान का स्मरण करने दो।" अभयकुमार निराश होकर वहाँ से चल दिया। रानी चेलना ने चारों शरण ग्रहण किए। सर्व योगों का त्याग किया और पद्मासन लगा, माया-ममता से चित्त-वृत्ति हटा, आत्म चिन्तवन में मन लगाया।

अभयकुमार ने बहुत कुछ सोच विचार के बाद महलों के पास कुछ घास की बनी हुई झोंपड़ियों की ज्न में आग लगवादी और महाराज को उसकी खबर देने को चला।

राजा श्रेणिक का मन बड़ा व्याकुल हो

महावीर स्वामी से पूछा, "प्रभो! मेरी रानी चेलना कैसे कुलटा बन गई?"

महावीर स्वामी ने उत्तर दिया "श्रेणिक तुम्हें भ्रांति हुई है रानी चेलना मनसा, वाचा, कर्मणा सभी तरह से सती है। रात उसने कहा था "अरे रे"! उन बिचारों की क्या गति होगी? भगवान उनकी रक्षा करो। यह वाक्य उसने उन मुनिराज के लिए कहा था जिनके दर्शन तुम राजगृही में वापिस आते हुए कर गए थे। श्रेणिक चेलना ही क्या तेरे अन्तःपुर की जितनी रानियाँ हैं, सभी सती हैं, तू अपनी शंका को दूर कर।"

श्रेणिक अपनी भूल पर पछताया और वहाँ से रवाना हुआ। घोड़े को सरपट भगा दिया। रास्ते में अभयकुमार मिला, राजा ने घोड़ा रोक लिया और पूछा अभयकुमार क्या किया?"

अभयकुमार बोला "महाराज की आज्ञा का पालन हुआ।"

राजा बोला "तुम बड़े मूर्ख हो, निर्दोषों को जला दिया। जाओ मुझे अपना मुँह न दिखाओ।"

राजा ने घोड़े का चाबुक लगाया, घोड़ा हवा हो गया। महल में पहुँचकर राजा ने देखा कि अन्तःपुर सुरक्षित है। पास की कुछ झोपड़ियां जली हुई हैं। वह अभयकुमार की बुद्धिमता की और अपने सौभाग्य की प्रशंसा करता हुआ चेलना के महल में पहुंचा।

उसने देखा रानी स्थिर पद्मासन लगाये बैठी है। धीरे २ "अर्हन्त अर्हन्त" शब्द निकल रहा है और सभी इन्द्रियाँ शून्य सी हो रही हैं।

उसने पुकारा "सती, सती !" रानी ने कोई उत्तर न दिया। राजा ने थोड़ा ठंडा पानी मंगवाया और सती की आँखों पर छिड़का। कुछ क्षण के बाद सती ने आँखें खोली। सामने स्वामी को देख बोली "नाथ क्या आपने दासी को क्षमा कर दिया ?"

राजा बोला, सती सती मुझे क्षमा करो मेरे पापी मन ने तुम्हारे चारित्र पर शंका की। सती इस अपराध को क्षमा करो। अपने सत बल से मेरी रक्षा करो।

प्रश्नावलि

१) मंत्री अभय कुमार ने राजा श्रेणिक की आज्ञा का पालन कैसे किया ?

२) राणी चेलना ने अन्त पुर में आग लगाने के संबन्ध में अभय कुमार से क्या कहा ?

३) राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर से चेलना के शील के संबन्ध में क्या प्रश्न पूछा और भगवान ने क्या उत्तर दिया।

४) राजा श्रेणिक ने अपनी भूल पर कोई पश्चाताप किया या नहीं किया तो क्या ?

५) अंत में रानी चेलना ने श्रेणिक को कैसे क्षमा प्रदान की ?

वीर शासन जयन्ति (चाल-ते गुरु मेरे उर वसो)

आयी सिरी महावीर की, पुण्य तिथि है आज ॥ टेक ॥
शुक्ल दशों वैशाख की, पायो केवल ज्ञान।
लोका लोक निहारियो, दर्पण ज्यों भगवान ॥ १ ॥ आ०
जिन धुनि जब विस्तरी, इन्द्र भयो हैरान।
बीते दिवस छियासठे, कारण कवन महान ॥ २ ॥ आ०
इन्द्र अवधि तब जोड़ियो, दूर भयो संदेह।
बिन गण धर धुनि ना खिरै, जानो निश्चय यह देह ॥३॥ आ०
इन्द्र निहारो ज्ञान में, गौतम विप्र महान।
गण धर होसी वीर को, चाल्यो तुरत सुजान ॥ ४ ॥आ०
छात्र सुभेष धराय के, पहुंच्यो ताकी शाल।
गौतम विप्र सों पूछियों अद्भुत प्रश्न विशाल ॥५॥ आ०
गौतम पण्डित भाखियो, तेरा गुरु है कोय।
बाद करूँ मैं तास सों, बेग मिलाओ मोय ॥ ६ ॥ आ०
इन्द्र कह्यो 'श्री वीर जिन, मेरे सतगुरु देव'
वीतराग सवज्ञ हैं, सुर नर करते सेव ॥ ७ ॥ आ०
गौतम पण्डित चालियो, संग है शिष्य अपार।
मान गलित तत्क्षण भयो, मान स्तंभ निहार ॥ ८ ॥ आ०
वीर चरण में आ पड़ो, जागो आतम ज्ञान।
मुख्य गणधर प्रभु वीर का, गौतम भयो महान ॥९॥ आ०
जिन धुनि तबहिं सुविस्तारी, झोलीगण धर देव।
द्वादशांग तब गूंथियो, जीव अजीव सुभेव ॥ १० ॥ आ०

तत्व अहिंसा भाखियो, भाख्यो कर्म सिद्धान्त।
स्याद्वाद प्रगटायके, नष्ट कियो एकान्त ॥ ११ ॥ वा०
विहरत देश विदेश में, दीनो हित उपदेश।
शरण मुक्ति दिखाइयो, होगये सिद्ध परमेश ॥ १२ ॥ टेक
वर्तत शासन वीर को, धजहूं करत कल्याण।
शासन जयन्ति मनाइये, प्राप्त करो 'शिव' थान ॥ १३॥ टेक

प्रश्नावलि

(१) वाणी खिरना, किसे कहते हैं ?

(२) भगवान महावीर को केवल ज्ञान किस तिथि को हुआ ?

(३) भगवान वीर की वाणी केवल ज्ञान होने से कितने दिन बाद किस तिथि को खिरी ? ऐसा क्यों हुआ ?

(४) इन्द्रभूति कौन था ? इन्द्र का और उसका क्या वार्तालाप हुआ ?

(५) मान स्तम्भ क्या होता है ? इन्द्र भूति का मान कैसे गलित हुआ।

(६) भगवान वीर के समव शरण में जाकर इन्द्र भूति के साथ क्या हुआ ? वे क्या बन गये ?

(७) गणधर किसे कहते हैं ? उन में क्या विशेषता होती है ?

(८) भगवान वीर के मुख्य २ सिद्धान्त बताओ।

(९) वीर शासन जयन्ति कैसे और क्यों मनानी चाहिये ?

सम्यक् ज्ञान

जैसे सम्यक्-दर्शन गुण आत्मा का स्वभाव है वैसे ज्ञान गुण भी आत्मा का स्वभाव है। सम्यक् दर्शन सहित ज्ञान को सम्यक ज्ञान कहते, परन्तु हैं दोनों जुदा २। इन दोनों के लक्षण में भेद है। सम्यक्त्व का लक्षण श्रद्धा न करना है और ज्ञान का लक्षण ठीक २ जानना है। सम्यक्-दर्शन कारण है और सम्यक् ज्ञान कार्य है। यद्यपि ये एक ही समय में होते हैं तो भी इन में कार्य कारण का भेद है, जैसे दीपक जलने के साथ ही प्रकाश होता है पर दीपक प्रकाश का कारण है। बिना सम्यक्त्व अर्थात् सच्ची श्रद्धा हुए बिन ज्ञान को सम्यक् ज्ञान नहीं कहते। इसीलिये सम्यक्-दर्शन कारण है और सम्यक् ज्ञान कार्य है।

वस्तु के स्वरूप को ठीक २ जैसा है वैसा जानना न कम जानना, न अधिक जानना, विपरीत नहीं जानना और संशय-रूप नहीं जानना, ऐसे जानने का नाम सम्यक्ज्ञान है ज्ञान का काम मात्र जानना है, मात्र प्रकाश करना है।

तत्व ज्ञानी सम्यक्-दृष्टि का यह ज्ञान है कि मैं निश्चय से परमात्मा अत शुद्ध निर्विकार ज्ञानदृष्टा हूँ, आत्म ज्ञान कहलाता है, यही ज्ञान परम सुख साधन है। इस आत्म ज्ञान को ही निश्चय-सम्यक् ज्ञान कहते हैं।

इस आत्म ज्ञान या निश्चय ज्ञान की प्राप्ति के लिये शास्त्र के द्वारा छह द्रव्य, ५ अस्तिकाय, सात तत्व और नव पदार्थों का ज्ञान जरूरी है। इस शास्त्राभ्यास का नाम व्यवहार सम्यक्-

है। जिन वाणी में बहुत से शास्त्र हैं उनको चार अनुयोगों
टि दिया गया है, जिनको चार वेद भी कहा जा सकता है।
ानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग।

) प्रथमानुयोग—प्रथम अवस्था के कम ज्ञान वाले शिष्यों
तत्वज्ञान की रुचि कराने में जो समर्थ हो उस को प्रथमा-
ोग कहते हैं। इस में उन महान पुरुषों के और महान स्त्रियों
जीवन चरित्र है जिन्होंने धर्म धारण करके अपने आत्मा की
ति की है। इसमें उनके भी चरित्र हैं जिन्होने पाप बाँध कर
ख उठाया है व जिन्होने पुण्य बांधकर सुख साता कारी साधन
त किया है। इससे यह शिक्षा मिलती है कि हम को भी पाप
त्याग करना चाहिये और धर्म का साधन करके अपना हित
ना चाहिये। इस योग के ग्रन्थ आदि पुराण हरिवंश पुराण,
र्व पुराण आदि हैं।

२) करणानुयोग—करणानुयोग में लोकाकाश अलोकाकाश
ालविभाग, नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देवरूप चारों गतियों के
मण का वर्णन है। कर्म क्या है? कर्म कैसे बंधते हैं, कैसे
नका संक्रमण होता है, मार्गणा क्या है, गुण स्थान क्या है
त्यादि वर्णन करणानुयोग में पाया जाता है। आत्म ज्ञान के
लिये करणानुयोग बड़ा सहायक है। इस योग के ग्रंथ गोमट्टसार
लब्धिसार, क्षपणसार त्रिलोकसार आदि हैं।

चरणानुयोग—निश्चय चारित्र की प्राप्ति के लिये जिस २
व्यवहार चारित्र की जरूरत है वह सब चरणानुयोग में बताया

गया है, मुनि का चारित्र क्या है, गृहस्थ का चारित्र क्या है, यह सब विस्तार से चरणानुयोग के ग्रन्थों में ही बताया गया है ऐसे ढंग से कि हर एक मनुष्य अपने अपने पद और योग्यतानुसार उस चारित्र का पालन कर सके और न्यायनीति से गृहस्थ के कार्यों को करते हुए अपने सहज सुख का साधन कर सके यह सब कथन कि किस २ चारित्र के पालन से वैराग्य अधिक बढ़ता है, आत्म बल की वृद्धि होती है, आत्म ध्यान की अधिक अधिक सिद्धि होती है, चरणानुयोग के ग्रन्थों में पाई जाती है— चरणानुयोग के ग्रन्थ मूलाचार, आचारसार, चारित्रसार, रत्नकरण्ड श्रावकाचार इत्यादि अनेक हैं।

(४) द्रव्यानुयोग—इस में छह द्रव्य, पंचास्तिकाय सात तत्व, नौ पदार्थों का व्यवहार नय से पर्याय रूप और निश्चयनय से द्रव्य रूप कथन है। इसमें शुद्ध आत्मानुभव के साधन बताये गये हैं जीवन मुक्त होने का मार्ग बताया गया है—आत्मा से परमात्मा बनने का साधन या उपाय इस अनुयोग में बताया गया है।

इन ऊपर लिखे चारों अनुयोगो के शास्त्रों को नित्य प्रति अभ्यास करना सम्यक् ज्ञान का सेवन है।

प्रश्नावलि

(१) सम्यक ज्ञान किसे कहते हैं ? सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान में क्या अन्तर है दृष्टान्त देकर समझाओ।

(२) निश्चय सम्यक् ज्ञान किसे कहते हैं ?

(३) जिन वाणी को कौन २ से मुख्य चार भेदों में बाँटा गया है उनके नाम बताओ।

(४) प्रथमानुयोग किसे कहते हैं ?-प्रथमानुयोग के कुछ मुख्य २ ग्रंथों के नाम बताओ।

(५) चरणानुयोग से आप क्या समझते हैं ? मुख्य २ ग्रंथों के नाम बताओ।

(६) करणानुयोग में क्या विषय है ? उसके मुख्य २ ग्रन्थ कौन से हैं ?

(७) द्रव्यानुयोग म किस विषय का कथन है, आजकल उपलब्ध मुख्य ग्रंथ कौन २ से हैं ?

(८) सम्यक्-ज्ञान की सेवा क्या है ?

सम्यक ज्ञान के आठ अंग

जैसे सम्यक् दर्शन के आठ अंग हैं वैसे सम्यक् ज्ञान के आठ अंग है, यदि आठ अंग के साथ शास्त्राभ्यास किया जावेगा तो ही ज्ञान की वृद्धि होगी, अज्ञान का नाश होगा और भावो की शुद्धि होगी कषायों की मंदता होगी, संसार से राग घटेगा वैराग्य बढ़ेगा, सम्यक्त्व की निर्मलता होगी। आठ अंगों को ध्यान में रखते हुये शास्त्रो का अभ्यासी मन वचन कायको लीन करलेता है, पढ़त २ आत्मानंद की छटा आती है।

सम्यक् ज्ञान के आठ अंग ये हैं—

(१) व्यंजन शुद्धि—अर्थात् मन्त्र शुद्धि—शास्त्र के वाक्यों का शुद्ध पढ़ना, ठीक २ सही उच्चारण करना। जब

तक शुद्ध नहीं पढ़ेंगे तब तक उसका अर्थ समय में नहीं आयेगा।

(२) अर्थ शुद्धि—शास्त्र का अर्थ ठीक २ समझना—ग्रन्थ के बनाने वाले आचार्य महाराज ने जो भाव ग्रन्थ में भरा है उसको ठीक २ समझना अर्थ शुद्धि है।

(३) उभय शुद्धि—ग्रन्थ का शुद्ध पढ़ना और उसके अर्थ को शुद्ध समझना। दोनों बातों का ध्यान एक ही साथ रखना उभय शुद्धि है।

(४) काला ध्ययन—शास्त्रों को यथा योग्य समय पर पढ़ना, शास्त्रों को ऐसे समय पर पढ़ना चाहिये जब परिवारों में निराकुलता हो। सन्ध्या का समय आत्म ध्यान तथा सामायिक करने का होता है उस समय को सवेरे दोपहर तथा शाम को बचा लेना चाहिये। जब कोई घोर आपत्ति का समय हो तूफान आ रहा हो भूकंप आरहा हो, घोर कलह या युद्ध हो रहा हो, किसी महान पुरुष के मरण का शोक मनाया जा रहा हो, ऐसे आपत्ति के समय पर शास्त्र पढ़ने में उपयोग नहीं लगाता, उस समय पर तो शाँति के साथ ध्यान करना ही योग्य है।

(५) विनय—शास्त्र को बड़े आदर से पढ़ना चाहिये शास्त्र पढ़ते समय बड़ी भक्ति और प्रेम होना चाहिये। शास्त्र पढ़ते समय भावना होनी चाहिये कि मेरे जीवन का समय सफल हो, मुझे आत्म ज्ञान की प्राप्ति हो।

(६) उपधान—धारणा सहित ग्रन्थ को पढ़ना चाहिये, जो कुछ पढ़ा जावे, वह भीतर जमता जावे, यदि पढ़ते चले गये और कोई बात ध्यान में नहीं जमी तो पढ़ना तो मिथ्या नहीं, सब वृथा होगा। यह अंग बड़ा जरूरी है, ज्ञान का प्रबल साधन है।

(७) बहुमान—शास्त्र को बड़े मान प्रतिष्ठा से ऊँची चौकी पर विराजमान करके आसन से बैठ कर पढ़ना उचित है। शास्त्रों को अच्छे २ सुन्दर गत्तों तथा वेष्टनों से भूषित करके ऐसी अलमारियों में सुरक्षित रक्खा जावे जहाँ दीमक, चूहे आदि उनको बिगाड़ न सकें।

(८) अनिन्हव—यदि अपने को शास्त्र ज्ञान हो और कोई व्यक्ति अपने से कुछ पूछे तो बता देना चाहिये, समझा देना चाहिये, छिपाना नहीं चाहिये, जिस गुरु से या जिस शास्त्र से ज्ञान प्राप्त किया हो उसका नाम न छिपावे।

यह सम्यक् ज्ञान के आठ अंग कहलाते हैं, इन आठों अंगों सहित जो शास्त्रों का अभ्यास करता है, मनन करता है, वह व्यवहार सम्यक् ज्ञान का सेवन करता हुआ निश्चय सम्यक् ज्ञान को प्राप्त कर लेता है।

प्रश्नावलि

(१) सम्यक् ज्ञान के आठ अंग कौन कौन से हैं? उन के स्वरूप बताओ।

(२) व्यंजन, शुद्धि, अर्थशुद्धि और समयशुद्धि से आप क्या समझते हैं ? दृष्टान्त देकर समझाओ।

(३) काला ध्ययन किसे कहते हैं ? किस समय कैसे २ और कौन से ग्रन्थ पढ़ने चाहिये ?

(४) शास्त्र की विनय क्या है ?

(५) उपधान किसे कहते हैं ?

(६) बहुमान और अनिन्हव अंग का स्वरूप समझा कर बताइये।

ज्ञान के आठ भेद

प्रमाण ज्ञान के मुख्य, पाँच भेद बताये गये हैं—मति ज्ञान श्रुति ज्ञान, अवधि ज्ञान, मनः पर्ययज्ञान और केवल ज्ञान। मति ज्ञान, श्रुतिज्ञान और अवधिज्ञान ये तीनों ज्ञान मिथ्यादृष्टि और सम्यक्दृष्टि दोनों के हो सकते हैं और मन पर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान यह दो ज्ञान सम्यकदृष्टि के ही होते हैं। मिथ्यादृष्टि का ज्ञान कुज्ञान अर्थात खोटा ज्ञान कहलाता है इससे मति, श्रुति और अवधि यह तीन ज्ञान जब मिथ्या दृष्टि के होते हैं तो कुमति कुश्रुति और कुअवधि कहलाते हैं। इस प्रकार इन तीनों कुज्ञान को मिलाकर ज्ञान के आठ भेद होजाते हैं।

मतिज्ञान—पाँच इन्द्रियों और मन की सहायता से सीधे

पदार्थ का जानना मतिज्ञान है—मति ज्ञान से पदार्थ को उस ही जाने हुवे पदार्थ के संबंध में और विशेष बात को जानना श्रुतिज्ञान है। जैसे ठंडी हवा ने हमारे शरीर को जब छुवा तो हमने स्पर्श इन्द्रि के द्वारा हवा के ठंडे पने को जाना, यह तो मति ज्ञान हुवा परंतु यह जानना कि यह ठंडी हवा लाभदायक है या हानिकारक, यह श्रुतिज्ञान है। रसना इन्द्रि के द्वारा पेडे के मीठेपन का स्वाद का ज्ञान होना मतिज्ञान है फिर चखने वाले के लिये उसके सुखदाई या दुखदाई होने का ज्ञान होना श्रुतिज्ञान है। भँवरे को सुगंधित फूल की सुगंध का आना मति ज्ञान फिर उस सुगन्ध से खिंचकर फूल की ओर आने की बुद्धि का होना श्रुति ज्ञान है। पतंगे को आँख से दीपक का जलता देखकर ज्ञान होना मतिज्ञान है, यह मानना है कि दीपक हितकारी है या अहितकारी यह श्रुतज्ञान है। कानों से बाजे की आवाज का सुनना मतिज्ञान है फिर यह जानना कि यह आवाज हारमोनियम की है श्रुत ज्ञान हुवा। मति ज्ञान और श्रुतिज्ञान प्रत्येक जीव के होता है, कोई भी जीव इन दो ज्ञानों से बचा हुवा नहीं है। इतना जरूर है किसी जीव में यह ज्ञान ज्यादा होते हैं और किसी में कम। निगोदिया जीव को एक अक्षर के अनतवें भाग अर्थात् नाममात्र ही ज्ञान होता है।

३. अवधि ज्ञान—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा को लिये हुवे रूपी पदार्थ अर्थात् पुद्गल पदार्थों को या पुद्गल सहित अशुद्ध जीवों का वर्णन बिना इन्द्रियों की सहायता आत्मीक

ात्कि से जानना अवधि ज्ञान है। देव, नारकी और श्री तीर्थकर भगवान के यह ज्ञान जन्म दिन से ही होता है, इस कारण इन तीनों के अवधि ज्ञान को भव प्रत्यय अवधि ज्ञान कहते हैं, सैनी पंचेन्द्रिय जीव को जिसकी इन्द्रियाँ पूर्ण हो, किसी गुण के कारण अर्थात् किसी खास तप के बल से यदि अवधि ज्ञान प्राप्त हो जावे तो उस को गुणप्रत्यय अवधि ज्ञान कहते हैं।

मन पर्यय ज्ञान—दूसरों के मन में पुद्गल या अशुद्ध जीवों के सबंध में कभी जो विचार किया जा चुका है, या अब चल रहा है या आगे कोई विचार होगा, उन सबको आत्मा द्वारा जानना मन पर्यय ज्ञान है। यह ज्ञान अवधि ज्ञान से ज्यादह निर्मल है, यह ज्ञान बहुत सूक्ष्म बातों को जान सकता है, जिनको अवधि ज्ञानी भी न जान सके। यह ज्ञान ध्यानी तपस्वी सम्यक दृष्टि महात्माओं तथा योगीश्वरों के ही होता है।

केवल ज्ञान—यह ज्ञान ज्ञान को ढकनेवाले वाले कर्म ज्ञानावरण के क्षय होने पर होता है, स्वाभाविक पूर्ण ज्ञान है, लोक अलोक की भूत भविष्यत् और वर्तमान सर्व वस्तुओं को और सब गुणपर्यायों को एक साथ जानने वाला है, इस ज्ञानमें किसी वस्तु का जानना बाकी नहीं रहता है। यह ज्ञान एक बार प्रकाश होने पर फिर मलीन होता नहीं सदा ही अपने शुद्ध स्वभाव में प्रगट रहता है यह ज्ञान अरहन्त परमेष्ठी तथ सिद्ध परमेष्ठी में प्रगट चमकता रहता है संसारी जीवों में प्रगट नहीं है, शक्ति रूप से रहता है।

इन ऊपर बताये पाँचो ज्ञानो में से, अवधि मनपर्यय और केवल यह तीन ज्ञान इन्द्रियो के सहारे बिना आत्मीकशक्ति साक्षात् रूप होते है इस लिये इन को प्रत्यक्ष कहते हैं और मति ज्ञान और श्रुति ज्ञान ये दो ज्ञान मन और इन्द्रियो के द्वारा होते हैं, इस लिये इनको परोक्ष कहते हैं।

इन ज्ञानो में श्रुत ज्ञान ही एक ज्ञान है जिससे शास्त्र ज्ञान होकर आत्मा का भेद विज्ञान होता है। यह आत्मा कर्मों से भिन्न है, सिद्ध परमेष्ठी के समान शुद्ध है। जिसको आत्मानुभव हो जाता है वही भाव श्रुति ज्ञान को पा लेता है। मन पर्यय ज्ञान और अवधि ज्ञान तो रूपी पदार्थ कोही जानते हैं, श्रुत ज्ञान अरूपी पदार्थों को भी जान सकता है। श्रुत ज्ञान के बल से केवल ज्ञान हो सकता। इस लिये श्रुत ज्ञान प्रधान है। ऐसा जान कर हमें चाहिये कि शास्त्र ज्ञानका अभ्यास करते रहें, जिससे आत्मानुभव मिले येही सहज सुख का साधन हैं, येही केवल ज्ञान का प्रकाशक है। जिन वाणी को खूब पढ़ना चाहिये यह पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को बताने वाली है, पूर्वा पर विरोध रहित है शुद्ध है, विशाल है अत्यंत दृढ़ है अनुपम [redacted] प्राणीमात्र की हितकारिणी है और रागादि मल को हरण करने वाली है इसके पठन पाठन से आत्महित का बोध होता है, सम्यक्त्व आदि गुणो की दृढ़ता होती है, नया नया धर्मानुराग

उपदेश देने की योग्यता आती है—परंपरासे आत्म ज्ञान की प्राप्ति करा परमपद को प्राप्त कराने वाली है।

प्रश्नावलि

१) ज्ञान के मुख्य भेद कितने हैं ? उनके नाम बताओ
२) मिथ्या दृष्टि के कौन से ज्ञान होसकते हैं ?
३) मति ज्ञान और श्रुतिज्ञान का स्वरूप समझाओ इन दोनों में से पहिले कौन सा ज्ञान होता है ?
४) निगोदिया जीवन के कितना ज्ञान कम से कम होता है।
५) अवधि ज्ञान से आप क्या समझते हैं ?
६) भवप्रत्यय अवधि और गुण प्रत्यय अवधि ज्ञान की व्याख्या करो।
७) मन पर्यय ज्ञान किसे कहते है ?
८) केवल ज्ञान का स्वरूप बताओ
९) प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते है ? और परोक्ष ज्ञान किसे कहते है कौन से २ ज्ञान प्रत्यक्ष हैं और कौन कौन से परोक्ष है।
१०) श्रुत ज्ञान में क्या विशेषता है ?

सम्यक्-ज्ञान की महिमा

इस जगत में जीवो को सुख का देने वाला ज्ञान के बराबर और कोई दूसरा पदार्थ नहीं है, यह ज्ञान उत्तम अमृत के समान है इस ज्ञानामृत के पीने से [illegible] जन्म जरा और मरण को एक

संसारी जीव के लिये भयानक रोग हैं, दूर हो जाते हैं। ज्ञान के बिना अज्ञानी जीव करोड़ों जन्मों में तप करके जितने कर्मों को दूर करता है उतने कर्मों को ज्ञानी जीव एक क्षण मात्र में अपने मन, वचन काय को रोक करके सहज में नाश कर देता है। इस जीव ने अनन्तवार मुनिव्रत धारण किया और ग्रैवेयक विमानों में भी गया, परन्तु आत्मज्ञान न होने के कारण इसे जरा भी सुख की प्राप्ति नहीं हुई।

सम्यक्-ज्ञान के अभ्यास से राग द्वेष मोह गिरता है, समता भाव जागृत होता है, आत्मा में रमण करने का उत्साह बढ़ता है, सहज सुख का साधन बन जाता है, स्वानुभाव जागृत हो जाता है। परम धैर्य्य प्रकाश होता है। यह जीवन परम सुन्दर सुखमय हो जाता है। ज्ञानाभ्यास के बिना कषायों की मंदता नहीं होती। व्यवहार की शुद्धता, परमार्थ का विचार आगम की सेवा से ही होते हैं। सम्यक् ज्ञान ही जीव का परम बन्धु है, ये ही उत्कृष्ट धन है, परममित्र है। सम्यक् ज्ञान ही अविनाशी धन है। स्वदेश में, परदेश में, सुख में, दुख में, आपदा में, सम्पदा में, परम शरण भूत सम्यक् ज्ञान ही है। यह एक स्वाधीन, अविनाशी धन है। पांचों इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होकर विनय भक्ति सहित ज्ञान की भावना करने से आत्म कल्याण होता है, मनुष्य जन्म का सार भी ये ही है कि सम्यक् ज्ञान की भावना को भावे और अपनी शक्ति को न छिपा कर संयम को धारण किया जावे। आत्म कल्याण के चाहने वालों के लिये

जरूरी है कि वह ध्यान और स्वाध्याय के द्वारा सदा ज्ञान का मनन करते रहे और तप की रक्षा करे। जिसके हृदय में ज्ञान सूर्य का उजियारा प्रकाशमान रहता है, उसके हृदय में मोहरूपी घोर अन्धकार टिकने नहीं पाता। धन्य है वे पुरुष जिनका जन्म गुरु की सेवा में बीतता है, जिनका मन धर्म ध्यान में लीन रहता है और जिनका शास्त्र अभ्यास साम्यभाव की प्राप्ति के लिये काम में आता है। स्वाध्याय करने वाले के स्वाध्याय करते समय पाँचो इन्द्रियें वश में होती हैं, मन, वचन काय स्वाध्याय में रत होजाते हैं, ध्यान में एकाग्रता होती है, विनय गुण की वृद्धि होती है, स्वाध्याय या ज्ञानाभ्यास परम उपकारी है शास्त्र का अभ्यासी पुरुष प्रमाद का दोष होते हुवे भी संसार में पतित नहीं होता, अपनी रक्षा करता रहता है, ज्ञान बड़ी अपूर्व वस्तु है। वे ही मुनिराज मोक्षपथ के स्वरूप को जानने वाले हैं जो जिन-वाणी को रुचिपूर्वक अपने कानो से सुनते हैं जो प्रमाण और नय के ज्ञाता हैं और जिनकी बुद्धि विशाल है। वास्तव में सम्यक ज्ञान की महिमा विचित्र है। इसलिये जिनेन्द्र-भगवान के कहे हुवे तत्वों और शास्त्रों का अभ्यास करना चाहिये। संशय विभ्रम और विमोह इन तीनो दोषो को छोड़कर आत्मा को पहचानना चाहिये। यह नर भव, उत्तम कुल तथा जिन वाणी का सुनना जो पुण्योदय से इस समय मिला है, यदि वैसे ही व्यर्थ में बीत गया तो फिर इनका मिलना वैसा ही कठिन है जैसे समुद्र में गिरे हुवे रत्न का मिलना कठिन है।

धन सम्पत्ति, हाथी, घोड़ा राज्य आदि कोई अपने आत्मा के काम नहीं आता है। ज्ञान जो आत्मा का स्वरूप है, उसी के प्रकाशित होने पर आत्मा निश्चल रहता है, उसे आत्म ज्ञान का कारण अपने और पर का भेद विज्ञान है। इसलिये हे भव्य जीवो! करोड़ों उपाय करके भी जिस तरह बने उस भेद विज्ञान को प्राप्त करो। मुनियों के नाथ जिनेन्द्र भगवान् ने फर्माया है, कि जितने पहले मोक्ष गये, अब जाते हैं और आगे जावेंगे, उन सबके लिये ज्ञान का प्रभाव ही कारण जानना चाहिये। पंचेन्द्रियों के विषयों की दाह एक धधकती हुई अग्नि के समान है, संसार के लोग वन के समान हैं, उन्हें यह अग्नि भस्म किये जा रही है, ऐसी अग्नि को शान्त करने का उपाय सिवाय ज्ञान रूपी मेघों की वर्षा के और कोई दूसरा नहीं है। हे भव्य जीवो! धनादिक पुण्य के फल हैं, उन्हें देखकर हर्ष मत करो, तथा रोग वियोग आदि को पापका फल जान कर शोक मत करो। यह पाप पुण्य पुद्गल रूप कर्म की पर्यायें हैं, जो पैदा होकर नाश को प्राप्त हो जाती हैं और फिर पैदा हो जाती हैं। सारांश यह है और लाख बातों की एक बात यह है और तुम उस पर निश्चय लाओ कि जगत् के सब द्वंद फन्द छोड़ कर ज्ञान का उपार्जन करो और आत्म ध्यान का अभ्यास करो। सम्यग्ज्ञान पाप रूपी अन्धकार को दूर करने के लिये सूर्य के समान है, मोक्ष रूपी लक्ष्मी के निवास के लिये कमल के समान है, काम रूपी सर्प को कीलने

के लिये मन्त्र के समान है मन रूपी हाथी को वश करने के लिये सिंह के समान है, समस्त तत्वों को प्रकाश करने के लिये दीपक के समान है और पांचों इन्द्रियों के विषयों को पकड़ने के लिये जाल के समान है।

प्रश्नावलि

(१) ज्ञानी और अज्ञानी के तप में कुछ अन्तर है या नहीं? यदि है तो क्या?
(२) सम्यग्ज्ञान की महिमा अपने शब्दों में वर्णन करो।
(३) संशय, विभ्रम और विमोह से आप क्या समझते हैं।
(४) प्रमाण और नय से क्या समझते हो?
(५) शास्त्राभ्यास का फल क्या है?
(६) भेद विज्ञान किसे कहते हैं?
(७) आत्म कल्याण के लिये भेद विज्ञान क्यों जरूरी है?

पाठ

बारह भावना

(दौलतरामजी कृत—चाल छन्द १४ मात्रा)

मुनि सकल व्रती बड़ भागी, भव भोगन तैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिंतैं अनुप्रेक्षा भाई ॥ १ ॥
इन चितत सम सुख जागै, जिमि ज्वलन पवनके लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जियशिवसुख ठानै ।२॥

अनित्य भावना १

जोबन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रीय भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई ॥३॥

अशरण भावना २

सुर असुर खगाधिप जेते, मृगज्यों हरि काल दलेते।
मणि मन्त्र तन्त्र बहु होई, मरते न बचावे कोई ॥४॥

संसार भावना ३

चहुँगति दुख जीव भरे है, परिवर्तन पंच करे है।
सब विधि संसार असारा, यामें सुख नाहि लगारा ॥५॥

एकत्व भावना ४

शुभ अशुभ करम फल जेते, भोगे जिय एक ही तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी ॥६॥

अन्यत्व भावना ५

जल पय ज्यों जिय तन मेला पै भिन्न भिन्न नहिं भेला।
तो प्रगट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिल सुत रामा ॥७

अशुचित्व भावना ६

पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादि तें मैली।
नवद्वार बहें घिनकारी, अस देह करें किम यारी ॥८॥

आस्रव भावना ७

जो योगन की चपलाई, तातें ह्वै आस्रव भाई।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधवंत तिन्हें निरवेरे ॥ ६ ॥

संवर भावना ८

जिन पुण्य पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके।१०

निर्जरा भावना ९

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप कर जो कर्म खिपावै, सोइ शिव सुख दरशावै।११

लोक भावना १०

किनहू न करयो न धरयो को षट् द्रव्य मइ न हरै को।
सो लोक माहि बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता १२

बोधि दुर्लभ भावना ११

अन्तिम ग्रीवक लौं की हद, पायो अनन्त विरियां पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाध्यो, दुर्लभ निज में मुनि साध्यो १३

धर्म भावना १२

जो भाव मोह तैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारै।१४।
सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिन की करतूत उचरिये।
ताको सुनके भवि प्राणी, अपनी अनुभूति पिछानी।१५

प्रश्नावलि

(१) भावना किसे कहते हैं? ये कितनी हैं, उनके नाम बताओ?
(२) भावनाओं का चिन्तवन कौन करते हैं? इनके चिन्तवन से क्या लाभ होता है?

(३) एकत्व और अन्यत्व भावना में क्या भेद है ?

(४) अशुचि भावना, निर्जरा भावना और धर्म भावना के छन्द सुनाओ।

(५) आस्रव और संवर भावना का स्वरूप बताओ।

(६) इन भावनाओं के रचयिता कौन हैं ? ये भावनायें किस पुस्तक से ली गई हैं ?

त्याग

प्रभु आदिनाथ को नर नारी ही नहीं, देवी देवता भी वन्दना करने आया करते थे। जिनको पिता के चरणों पर झुका हुआ देख प्रभु की दोनों कन्या ब्राह्मी और सुन्दरी आत्म सुख अनुभव करतीं थीं। अभी उम्र की वे छोटी थीं और पिता को ही सर्वस्व समझतीं थीं। समझतीं क्यों नहीं भला इनसे भी महान् और कोई होगा, देवता तक जिनकी वन्दना करते हैं। समय तो रुकता नहीं आया और बीत गया कि एक दिन सरल स्वभाव पितासे पूछने लगीं ' पिताजी। आपसे भी अधिक पूज्य कोई हैं ?

प्रभु थोड़ी देर मौन रहे, फिर बोले—"हां हैं"।

पुत्रियों को पिता के उत्तर में आस्था लाने में यत्न लगा, उन्हें रह रह कर आज क्यों पिता के ये वाक्य गम्भीर लगने लगे, तो आगे प्रश्न किया—"पिताजी। वे कौन हो सकते हैं ? जो आपसे भी पूज्य हैं। या आप हमें छोटा अल्पज्ञ समझ हमारी आत्म-तुष्टि नहीं करना चाहते" ?

प्रभु ने कहा—"जिनसे तुम्हारा विवाह होगा, वे हमारे पूज्य होंगे।" अब संशय का कोई स्थान नहीं। पुत्रियों को आदत नहीं कि पिता से भी अधिक किसी को पूज्य समझें। पर वे मानव हैं, उनमें आज अन्तर्द्वन्द्व मचा है। एक ओर पिता का जगत् पूजत्व और एक ओर समस्त जीवन का सुख वैभव।

ब्राह्मी ने सुन्दरी और सुन्दरी ने ब्राह्मी की ओर देखा—देखा जैसे दोनों की आंखों ने कहा—"उन्हीं के द्वारा पिता का विश्व पूज्यत्व नष्ट होगा ?" वे अपने और दूसरे के हृदय की थाह लेने लगीं।

उसी पल उन्होंने निश्चय किया और प्रभु के चरणों में नत होकर बोलीं—"पर पिताजी, हमतो दीक्षा लेने जा रही हैं और वे आर्यिका होगईं। प्रभु कन्याओं के त्याग पर मुस्करा दिये।

(अक्षयकुमार B A दि० जैन धर्म कथाङ्क)

प्रश्नावलि

(१) ब्राह्मी और सुन्दरी ने अपने पिताजी श्री ऋषभदेव भगवान् से क्या पूछा ? और भगवान् ने उनको क्या उत्तर दिया ?

(२) अन्तर्द्वन्द्व का क्या अर्थ है ?

(३) पिताजी का उत्तर सुनकर ब्राह्मी और सुन्दरी ने क्या निश्चय किया और क्या किया ?

सम्यक् चारित्र

अपने ही शुद्ध आत्म भावों में रमण करने का नाम निश्चय चारित्र है और इस अवस्था को प्राप्त होने का जो कारण है वह व्यवहार चारित्र है। यदि कोई केवल व्यवहार चारित्र को ही पाले और उसके द्वारा निश्चय सम्यक् चारित्रको प्राप्त न करसके तो वह व्यवहार चारित्र यथार्थ नहीं कहलायेगा, जैसे कोई व्यापारी व्यापार वाणिज्य तो बहुत कर और धन का लाभ नहीं कर सके तो उसके व्यापार को यथार्थ व्यापार नहीं कहा जायेगा।

यह व्यवहार सम्यक् चारित्र दो प्रकार का है। एक सकल चारित्र या साधु का चारित्र, दूसरा विकल या श्रावक का चारित्र।

सकल चारित्र

संसारी प्राणी क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायों के वशीभूत होकर रागी द्वेषी हुआ २ अपने स्वार्थ साधन के लिये पांच प्रकार के पाप, हिंसा, झूठ चोरी, कुशील और परिग्रह को किया करता है। इन ही पांचों पापों का पूर्ण रूप से त्याग करना, साधु का चारित्र है। इन ही के पूर्ण त्याग को महाव्रत कहते हैं इन ही की दृढता के लिये पंच समिति तथा तीन गुप्ति का पालन किया जाता है। इसीलिये पंच महाव्रत, पंच समिति और तीन गुप्ति इनको मिला कर तेरह प्रकार का चारित्र मुनि का कहा गया है। इनमें पंच महाव्रत मुख्य हैं। यद्यपि महाव्रत पांच बताये गये हैं, परन्तु एक अहिंसा महाव्रत में बाकी चार सत्य महाव्रत,

अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत और परिग्रह त्याग महाव्रत गर्भित है। झूठ बोलने से, चोरी करने से, कुशील भाव से तथा परिग्रह की तृष्णा से आत्मा के गुणों का घात होता है, इसलिये ये सब हिंसा के ही भेद हैं। जहां हिंसा का सर्वथा पूर्ण त्याग है, वहां झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन चारों पापों का भी त्याग हो जाता है।

(१) अहिंसा महाव्रत

कषायसे अपने या पर जीवके भाव प्राण या द्रव्य प्राणको पीड़ा न देना अहिंसा व्रत है, राग द्वेष,क्रोध मान माया लोभादि कषायों से या प्रमाद भाव से आत्मा के शुद्ध शान्त भाव का घात होता है उन भावों के होने को भाव हिंसा कहते हैं। अपने तथा दूसरों के द्रव्य प्राणों के घात होने का नाम द्रव्य हिंसा है। मुनिराज छह कायके जीवोंका घात नहीं करते,उनकी रक्षा करते हैं इसलिये उनके द्रव्य हिंसा का त्याग होता है, राग द्वेष, मोह आदि विकार भावों को उन्होंने नष्ट कर दिया है इसलिये उनके भाव हिंसा भी नहीं होती। मन, वचन, काय से संकल्पी तथा आरम्भी हिंसा के सर्वथा त्यागी होते हैं। मुनिराज भावना किया करते हैं कि वे अपने वचन को वश में रखें, कभी कोई ऐसा वचन मुख से न निकलने पावे जिससे अपने को या अन्य प्राणियों को पीड़ा पहुँचे। कभी कोई हिंसा रूप विचार मन में न आने पावे। इस बात का विचार करते रहते हैं कि गमन करते समय किसी जीव की हिंसा न होवे,

किसी वस्तु के उठाने या रखने समय किसी जीव की हिंसा न हो जावे, भोजन पान आदिक भले प्रकार देख शोध कर किया जावे। जिससे किसी जीव की हिंसा न होवे।

(२) सत्य महाव्रत

मन, वचन, काय से सर्वथा असत्य का त्याग करना—महाव्रती साधु सदा हित मित मिष्ट वचन शास्त्रोक्त ही बोलते हैं, वे कभी अप्रिय कटुक, कठोर पाप रूप, निंद्य गाली गलौच के शब्द तथा हिंसा के बढ़ाने वाले वचन नहीं कहते। मुनिराज इस बात का विचार रखते हैं कि क्रोध न आने पावे, लोभ न उपजे, भय उत्पन्न न हो क्यों कि इन तीनों अवस्थाओं में असत्य वचन मुख से निकल जाता है। मुनिराज यह ध्यान रखते हैं कि हास्य रूप वचन अर्थात् हंसी मजाक के वचन मुख से न निकलने पावें, क्यों कि हंसी मजाक में असत्य वचन बोला जाता है, वे सदा ही आगम के अनुसार पाप रहित वचन बोलने का विचार किया करते हैं।

(३) अचौर्य महाव्रत

मन, वचन, काय से सर्वथा चोरी का त्याग करना—मुनिराज बिना दिये हुवे किसी की कोई भी वस्तु ग्रहण नहीं करते। जल, मिट्टी तथा वृक्ष की पत्ती भी बिना दी हुई नहीं लेते हैं। अचौर्य महाव्रत का पालन करते हुए मुनिराज इस बात का ध्यान रखते हैं कि वे ऐसे घर या स्थान पर न रहें, जहां कोई अपवाद वगैरह हो।

शून्य घर होना चाहिये जिससे किसी वस्तु के ग्रहण करने की प्रेरणा न हो। ऐसे स्थान में रहना जो छोड़ा हुवा हो जिससे किसी के ग्रहण किये हुवे स्थान के ग्रहण करने का दोष न आवे। जो कोई और प्राणी उस स्थान में ठहरे जहां अपना वास हो तो उसको ठहरने से नहीं रोकना क्योंकि रोकने से उस स्थान को अपनी मिलकीयत बनाने का दोष आता है। मुनिराज इस बात का भी विचार रखते हैं कि भिक्षा की विधि में कोई बात कम या ज्यादा न होने पावे क्योंकि इससे भी पर वस्तु के ग्रहण करने का दोष लगता है। इस बात का भी विचार रहता है कि धर्मात्माओं में किसी प्रकार का भी कोई झगड़ा न होवे।

(४) ब्रह्मचर्य महाव्रत—

मन, वचन काय से सर्वथा मैथुन का त्याग करना। मुनिराज अठारह हजार शील के भेदों का पालन कर स्त्री मात्र के त्यागी होते हैं और निरंतर अपने आतमा का अनुभव किया करते हैं। इस महाव्रत को दृढ़ता के साथ पालन करने के लिये मुनिराज उन सब बातों से अपने आपको बचाते हैं, जिनसे काम भाव उत्पन्न हो—स्त्रियों के राग भाव उत्पन्न करने वाली कथाओं का त्याग करते हैं, स्त्रियों के सुन्दर २ मनोहर अङ्गों के देखने का त्याग करते हैं, पहले भोगे हुवे विषय भोगों को याद नहीं करते; कामोद्दीपन करने वाली वस्तुओं के खाने का त्याग

करते हैं और अपने शरीर को शृङ्गार रूप करने का त्या
करते हैं। इत्यादि सब कारणों से बचने का सदैव विच
करते रहते हैं।

५ परिग्रह त्याग महाव्रत

चौबीस प्रकार के परिग्रह का मन, वचन, काय से सर्व
त्याग करना। चौदह प्रकार का अन्तरंग परिग्रह निम्न
है जैसे मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अर
शोक भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद।

दश प्रकार बहिरंग परिग्रह

चांदी, सोना, क्षेत्र, मकान, धन धान्य, दासी दास, कपडे और बर्त

मुनिराज पांचों इन्द्रियों के किसी भी इष्ट अनिष्ट विष
में रागद्वेष रूप नहीं प्रवर्तते।

पांच समिति

प्रमाद रहित होकर सावधानता पूर्वक यत्न का न
समिति है। मुनिराज नीचे लिखी पांच समितियों का पाल
महाव्रतों की रक्षा तथा दृढ़ता के लिये किया करते हैं।

(अ) ईर्या समिति

पृथ्वी को चार हाथ प्रमाण आगे देखकर चलना।
मे ही चलना, रात्रि को नहीं चलना, ऐसे मार्ग में चलना
मनुष्य और पशुओं के आने जाने से रौंदा हुआ हो धीरे
आगे को देखते हुये चलना। चलते हुये इधर उधर

देखना अर्थात् ऐसी सावधानता से चलना जिससे किसी जीव की भी हिंसा न होवे।

(आ) भाषा समिति

हितकारी, प्रमाणीक सन्देह रहित, मिष्ट वचन बोलना। मुनिराज के मुखारविंद से संसार का उपकार करने वाले, सब तरह की बुराइयों का नाश करने वाले कानों को सुखकारी, सब प्रकार का सन्देह दूर करने वाले और मिथ्यात्व रूपी रोग को नाश करने वाले अमृत समान वचन ही निकला करते हैं।

(इ) एषणा समिति

दिन में एक बार निर्दोष आहार भिक्षा वृत्ति से लेते हैं। मुनिराज छियालीस दोष, बत्तीस अन्तराय को टालकर कुलीन श्रावक के घर केवल तप वृद्धि के अभिप्राय से आहार करते हैं, शरीर को पुष्ट करने का उनका उद्देश्य नहीं होता है।

(ई) आदान निक्षेपण समिति

शास्त्र, कमण्डल, पीछी आदिक धर्म के उपकरणों को जो मुनि के पास होते हैं, उनको नेत्रों से देखकर पीछी से शोध कर इस प्रकार धरना उठाना कि किसी जीव को बाधा न हो।

(उ) व्युत्सर्ग समिति

जीव जन्तु रहित प्रासुक भूमि पर शरीर के मल मूत्र आदि इस प्रकार सावधानी के साथ डालना जिसमें किसी

जीव को बाधा न हो। समिति मुनिजन का मूल है, मुनिराज अपने चारित्र की शुद्धि के हेतु इनका पालन करते हैं।

गुप्ति—

भले प्रकार मन, वचन, काय की यथेच्छा प्रवृत्ति के रोकने का नाम गुप्ति है। गुप्ति तीन हैं—

(क) मनोगुप्ति

ख्याति, लाभ, मान की वाञ्छा के बिना मनोयोग को रोकना।

(ख) वचनगुप्ति

ख्याति, लाभ, मान की वाञ्छा के बिना वचन योग को रोकना।

(ग) कायगुप्ति

ख्याति लाभ, मान की वाञ्छा के बिना काय योग को रोकना।

गुप्ति ही मुनि पद का मूल है, गुप्ति बिना सम्यक् चारित्र नहीं होता और सम्यक् चारित्र बिना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। इस तेरह प्रकार के चारित्र का पालन मुनिराज किया करते हैं—इसके अतिरिक्त मुनिराज पाँचों इन्द्रियों को जीतते हैं। पाँचों इन्द्रियों के विषयों में रागद्वेष नहीं करना पंच इन्द्रिय विजय है।

मुनिराज छह आवश्यक का नित्य प्रति पालन किया करते हैं। सामायिक करते हैं, अर्हन्त भगवान् की स्तुति करते हैं, जिनेन्द्र प्रभु की वंदना करते हैं, स्वाध्याय करते हैं प्रतिक्रमण अर्थात् लगे हुवे दोषों को दूर करने के लिये पश्चाताप करते हैं, कायो

त्सर्ग करते हैं अर्थात् शरीर से ममत्व त्यागते हैं और खड़े होकर ध्यान लगाते हैं।

मुनिराज के सात बातें या विशेष गुण यह और होते हैं— वे स्नान नहीं करते, दन्तधावन नहीं करते, नग्न रहते हैं, जमीन पर रात्रि के पिछले पहर में एक ही करवट अल्प निद्रा लेते हैं, दिन में एक बार थोड़ा सा आहार लेते हैं, वह भी खड़े होकर और अपने हाथ का ही पात्र बना कर, अपने हाथ से ही अपने बालों का लौंच करते हैं और जो क्षुधादि परीषहों से न डर कर अपने आत्म ध्यान में लीन रहते हैं। इस प्रकार पंच महाव्रत, पंचसमिति पंच इन्द्रिय विजय, छह आवश्यक, स्नान नहीं करना, दांत नहीं धोना, नग्न रहना, जमीन पर सोना, एक बार दिन में भोजन करना, हाथों का ही पात्र बना कर उसमें खड़े २ आहार लेना, अपने हाथ से अपने बालों का लौंच करना, यह कुल मिला कर साधुओं के २८ मूल गुण होते हैं जो साधुओं में होने ही चाहियें, जैसे मूल के बिना वृक्ष टिक नहीं सकता वैसे ही इन गुणों के बिना साधु हो नहीं सकता, इसीलिये इनको साधुओं का २८ मूल गुण कहा गया है।

मुनिराज वीतरागी निःस्पृही होते हैं उनके लिये शत्रु मित्र, महल मसान, सोना और कांच निंदा और स्तुति, पूजन करना या तलवार से प्रहार करना ये सब समान हैं। वे परम समता भाव के धारक होते हैं, हर अवस्था में सदा शांत चित्त रहते हैं।

मुनिराज अनशन, ऊनोदर, व्रत परिसंख्यान, रस परित्याग

विविक्त शय्यासन और काय क्लेश इन छह बहिरङ्ग के तप को तथा प्रायश्चित, विनय, वैय्या वृत्य स्वाध्याय, कायोत्सर्ग और ध्यान इन छहों अन्तरङ्ग के तप को कुल मिला कर बारह प्रकार के तप को साधन करते हैं। उत्तम क्षमा उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य तथा उत्तम ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। ये सदा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय धर्म का पालन करते हैं। ये कभी दूसरे मुनिवर के साथ या कभी अकेले विहार करते हैं और स्वप्न मात्र में भी संसार के विनाशीक सुख की इच्छा नहीं करते।

यह मुनि का सकल चारित्र वर्णन किया। अब जरा निश्चय चारित्र या आत्म चारित्र पर भी विचार कीजिये। निश्चय चारित्र से अपने आत्मा की ज्ञानादि सम्पत्ति प्रगट होती है और पर वस्तु में सब प्रकार की प्रवृत्ति मिट जाती है। जब मुनिराज स्वरूपाचरण के समय भेद ज्ञान रूपी बहुत तेज छैनी से अपने अन्तरङ्ग का परदा फाड़ कर और शरीर के वर्ण आदि बीस गुणों और राग, द्वेष क्रोध, मान आदि भावों से अपने आत्मीक भाव को जुदा कर अपने आत्मा में अपने आत्म हित के लिये अपने आत्मा के द्वारा अपने आत्मा को आप ही ग्रहण करते हैं तब गुण गुणी, ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय में कुछ भी भेद नहीं रहता अर्थात् एक ऐसी ध्यानमय अवस्था हो जाती है जिसमें ये सब एक हो जाते हैं, सब विकल्प मिट जाते हैं। इस ध्यान की अवस्था में,

न ध्यान का न ध्याता का और न ध्येय का कोई भेद है और न वचन से कहने योग्य ही कर्म भेद है, उसमें तो चेतना मात्र ही कर्म, चेतन ही कर्ता और चेतना ही क्रिया है, यहां कर्ता, कर्म क्रिया भाव बिल्कुल जुदा नहीं है और न एक दूसरे से टूटने योग्य ही है। यहां तो शुद्ध भाव की स्थिर अवस्था है, जिसमें दर्शन, ज्ञान चारित्र भी एक रूप होकर प्रकाशमान हो रहे हैं। उस ध्यान अवस्था में प्रमाण, नय निक्षेप का प्रकाश अनुभव में नहीं आता, किन्तु उसमें आत्मा विचार करता है कि मैं दर्शन ज्ञान, सुख वीर्य रूप हूँ, मुझमें कोई दूसरा भाव नहीं है। मैं ही साध्य हूँ और मैं ही साधक हूँ तथा कर्म और उनके फल से रहित भी मैं ही हूं। मैं चैतन्य का पिण्ड अर्थात् समुद्र हूँ और मैं ही प्रचण्ड खण्ड रहित उत्तम गुणों का पिटारा हूं तथा सब पापों से रहित हूँ।

इस प्रकार विचार करते करते मुनिराज जब आत्म ध्यान में लीन हो जाते हैं तो जो अकथनीय आनन्द उस समय प्राप्त होता है, वह आनन्द न इन्द्र को मिलता है, न अहमिन्द्र को मिलता है, न चक्रवर्ति और नागेन्द्र को प्राप्त होता है।

उस समय वे शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि के द्वारा चार घातिया कर्म रूपी वन को भस्म कर केवल ज्ञान को प्राप्त होते हैं, और उसके द्वारा तीनों काल की बातों को हाथ में रखे हुये आंवले की तरह जान कर भव्य पुरुषों को मोक्ष मार्ग का उपदेश करते हैं, यह उनकी अर्हन्त अवस्था कहलाती है। इसके बाद वे आयु

नाम, गोत्र और वेदनी इन चारों अघातिया कर्मों को भी क्षण भर में क्षय करके मोक्ष को चले जाते हैं। कर्मों का नाश होने पर उनके सम्यक्त्व आदि आठ गुण प्रगट हो जाते हैं। मोह के नाश से सम्यक्त्व, ज्ञानावरणी के नाश से ज्ञान, दर्शनावरणी के नाश से दर्शन, अन्तराय के नाश से वीर्य, आयु के नाश से अवगाहना, नाम कर्म के नाश से सूक्ष्मत्व, गोत्र कर्म के नाश से अगुरु लघु और वेदनी के नाश से अव्याबाध। वे संसार रूपी समुद्र से तिर कर और उसके पार पहुँच कर, विकार, शरीर और मूर्ति रहित हो शुद्ध चैतन्यमय अविनाशी सिद्ध परमात्मा हो जाते हैं। सिद्ध भगवान की आत्मा में तीनों लोक और अलोक अपने २ गुण और पर्याय सहित ऐसे झलकते हैं जैसे दर्पण में पदार्थ झलकते हैं। मोक्ष में जैसे और सिद्ध हैं वैसे ही ये भी अनन्तानन्त काल तक रहेंगे, वे जीव धन्य हैं जिन्होंने मनुष्य जन्म पाकर ऐसा काम किया। ऐसे ही महान आत्माओं ने अनादिकाल से चले आये पंच परावर्तन रूप संसार को त्याग कर उत्तम अविकार अतीन्द्रिय अविनाशी मोक्ष सुख को प्राप्त किया है। इस आनन्दमय सिद्ध अवस्था के पाने का कारण निश्चय और व्यवहार ऐसे दो दो भेद रूप सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र हैं। भव्य जीवों को आलस्य छोड़कर इन्हें ग्रहण करना चाहिये। जिन विषय कषायों का हमेशा से सेवन किया उनसे मन को हटा कर मोक्ष सुख पाने का उद्यम मनुष्य भव के सिवा और दूसरे भव में नहीं हो सकता। मनुष्य

भव का पाना बड़ा ही कठिन है एक बार ऐसा समय वृथा खो देने से फिर इसका मिलना बहुत ही दुर्लभ है इसलिये अब जो अमोलक अवसर प्राप्त हुवा है, उसे यूँ ही न गमाकर अपने आत्म कल्याण के मार्ग पर आरूढ़ होना चाहिये।

प्रश्नावलि

(१) सम्यक् चारित्र किसे कहते हैं ?

(२) निश्चय और व्यवहारचारित्र में क्या अन्तर है ?

(३) व्यवहार चारित्र के कितने भेद हैं ? उनके नाम बताओ ?

(४) सकल चारित्र से तुम क्या समझते हो ? इस चारित्र का पालन कौन करते हैं।

(५) महाव्रत किसे कहते हैं ? महाव्रत कितने होते हैं उनके नाम बताओ।

(६) समिति से आप क्या समझते हैं ? समिति कितने प्रकार की होती हैं ?

(७) ईर्या समिति, आदान निक्षेप और प्रतिष्ठापन समिति से आप क्या समझते हैं ?

(८) भाषा समिति और एषणा समिति का स्वरूप अपने शब्दों में समझाओ।

(९) गुप्ति किसे कहते हैं ? गुप्तियां कितनी होती हैं ? उनके नाम बताओ और प्रत्येक का स्वरूप समझाओ।

(१०) मुनिराज के षट् आवश्यकों के नाम बताओ।

(११) साधुओं के २८ मूल गुण बताओ।

(१२) बारह प्रकार के तप का नाम बताओ।

(१३) निश्चय चारित्र का कुछ स्वरूप अपनी सरल भाषा में समझाओ।

(१४) क्या व्यवहार चारित्र निश्चय चारित्र के बिना कार्यकारी है ?

(१५) क्या निश्चय चारित्र व्यवहार चारित्र के बिना कार्यकारी है ?

(१६) पंच इन्द्रिय विजय से क्या समझते हो ?

(१७) दशलक्षण धर्म के नाम बताओ और उनका संक्षेप स्वरूप भी बताओ।

(१८) रत्नत्रय किसे कहते हैं ?

(१९) तेरह प्रकार का चारित्र क्या है ?

(२०) सिद्ध अवस्था का कुछ वर्णन संक्षेप से अपने शब्दों में करो ?

विकल चारित्र या श्रावकधर्म

पहले बता चुके हैं कि व्यवहार सम्यक् चारित्र दो प्रकार का होता है—सकल चारित्र और विकल चारित्र, सकल चारित्र का वर्णन पढ़ चुके हो अब विकल चारित्र का कुछ संक्षेप से वर्णन करते हैं। विकल चारित्र का वर्णन तुम पहले भी धर्म शिक्षावलि चतुर्थ भाग में पढ़ चुके हो।

जिन वचन श्रद्धानी, न्यायमार्गी, पाप से डरने वाले ज्ञानी विवेकी गृह कुटुम्ब, धनादिक सहित गृहस्थियों के विकल चारित्र होता है—गृहस्थियों का चारित्र पंच अणुव्रत, तीन

चार शिक्षाव्रत रूप तीन प्रकार का होता है। पंच अणुव्रत इस प्रकार हैं —

(१) अहिंसा अणुव्रत—स्थावर जीवों की हिंसा का त्यागी न होकर त्रस जीवों की संकल्पी हिंसा का त्याग करना अहिंसा णुव्रत कहलाता है। इस अणुव्रत के पालने वाला स्थावर जीवों की भी व्यर्थ हिंसा नहीं करता, यत्नाचार पूर्वक व्यवहार करता है।

इस व्रत का पालन करने वाला मनुष्य पशु आदि जीवों के नाक कान, पूंछ, होंठ आदि अंगोपांग को नहीं छेदता, जीवों को बंधनों से जकड़ता नहीं, बंदीगृह में रोकता नहीं, पक्षियों को पींजरे आदि में रोक कर रखता नहीं। जीवों को लात, मुक्का, लाठी, चाबुक, कोड़ा आदि से मारता नहीं। पशुओं पर तथा मनुष्यों पर, गाड़ा गाड़ी पर उनकी शक्ति से अधिक बोझा लादता नहीं, अपने आधीन मनुष्यों पशुओं तथा अन्य जीवों को खाना पीना न देकर भूखा प्यासा नहीं मारता।

(२) सत्याणुव्रत —स्थूल झूठ बोलने का त्याग करना सत्याणुव्रत कहलाता है। इस व्रत का धारण करने वाला न तो आप मोटा झूठ बोलता है न दूसरों से बुलवाता है और ऐसा सच भी नहीं बोलता कि जिसके बोलने से दूसरों पर आपत्ति आ जावे या अपवाद फैल जावे।

इस व्रत का धारक मिथ्या उपदेश नहीं देता, दूसरों के दोष प्रगट नहीं करता विश्वासघात नहीं करता, झूठी गवाही नहीं

देता; झूठे जाली कागज, तमस्सुक, रसीद वगैरह नहीं बनाता, झूठे जाली मोहर और हस्ताक्षर वगैरह नहीं करता।

(३) अचौर्याणुव्रत.—प्रमाद के वश होकर दूसरों की बिना दी हुई वस्तुको ग्रहण करने का त्याग करना अचौर्याणुव्रत है।

इस व्रत का पालन करने वाला दूसरों को चोरी करने के उपाय नहीं बताता, चोरी का माल नहीं लेता, राजा के महसूल आदि की चोरी नहीं करता, अथवा राज्य आज्ञा के विरुद्ध काय नहीं करता, लेन देन के बाट तराजू, गज आदि को कम ज्यादा नहीं रखता। लेने के बाट और, देने के बाट और नहीं रखता, ज्यादा कीमत वाली चीज में घटिया चीज मिला कर बढ़िया वस्तुमें नहीं चलाता जैसे दूध में पानी मिलाकर असली के तौर पर बेचना।

(४) ब्रह्मचर्याणुव्रत —अपनी विवाहिता स्त्री के सिवाय अन्य सब स्त्रियों से काम सेवन का त्याग करना ब्रह्मचर्याणुव्रत है। इस व्रत का धारी अपने या अपने आधीन पुत्र पुत्रियों को छोड़ दूसरों के पुत्र पुत्रियों का विवाह नहीं करता कराता, काम सेवन के अंगों को छोड़ कर अन्य अंगों द्वारा काम क्रीड़ा नहीं करता। मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को नीच नहीं करता, भंड चेष्टायें नहीं करता, पुरुष होकर स्त्री का वेष नहीं बनाता, स्वांग आदि नहीं रचता, और न ही स्त्रियों जैसी चेष्टायें करता काम की सेवन तीव्र अभिलाषा नहीं रखता, व्यभिचारिणी स्त्रियों के घर आता जाता नहीं, न उनको अपने घर बुलाता है उनके

चार शिक्षाव्रत रूप तीन प्रकार का होता है। पांच अणुव्रत इस प्रकार हैं—

(१) अहिंसा अणुव्रत—स्थावर जीवों की हिंसा का त्यागी न होकर त्रस जीवों की सङ्कल्पी हिंसा का त्याग करना अहिंसा णुव्रत कहलाता है। इस अणुव्रत के पालने वाला स्थावर जीवों की भी व्यर्थ हिंसा नहीं करता, यत्नाचार पूर्वक व्यवहार करता है।

इस व्रत का पालन करने वाला मनुष्य पशु आदि जीवों के नाक, कान, पूंछ होंठ आदि अंगोपांग को नहीं छेदता, जीवों को बंधनों से जकड़ता नहीं, बंदीगृह में रोकता नहीं, पक्षियों को पींजरे आदि में रोक कर रखता नहीं। जीवों को लात, मुक्का, लाठी, चाबुक, कोड़ा आदि से मारता नहीं। पशुओं पर तथा मनुष्यों पर, गाड़ा गाड़ी पर उनकी शक्ति से अधिक बोझा लादता नहीं, अपने आधीन मनुष्यों पशुओं तथा अन्य जीवों को खाना पीना न देकर भूखा प्यासा नहीं मारता।

(२) सत्याणुव्रत —स्थूल झूठ बोलने का त्याग करना सत्याणुव्रत कहलाता है। इस व्रत का धारण करने वाला न तो आप मोटा झूठ बोलता है न दूसरों से बुलवाता है और ऐसा सच भी नहीं बोलता कि जिसके बोलने से दूसरों पर आपत्ति आ जावे या अपवाद फैल जावे।

इस व्रत का धारक मिथ्या उपदेश नहीं देता, दूसरों के दोष प्रगट नहीं करता विश्वासघात नहीं करता, झूठी गवाही नहीं

देता, झूठे जाली कागज, तमस्सुक रसीद वगैरह नहीं बनाता, झूठे जाली मोहर और हस्ताक्षर वगैरह नहीं करता।

(३) अचौर्याणुव्रत —प्रमाद के वश होकर दूसरों की बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण करने का त्याग करना अचौर्याणुव्रत है।

इस व्रत का पालन करने वाला दूसरों को चोरी करने के उपाय नहीं बताता, चोरी का माल नहीं लेता, राजा के महसूल आदि की चोरी नहीं करता, अथवा राज्य आज्ञा के विरुद्ध कार्य नहीं करता, लेन देन के बाट तराजू, गज आदि को कम ज्यादा नहीं रखता। लेने के बाट और, देने के बाट और नहीं रखता, ज्यादा कीमत वाली चीज में घटिया चीज मिला कर बढ़िया वस्तुएँ नहीं चलाता जैसे दूध में पानी मिलाकर असली के तौर पर बेचना।

(४) ब्रह्मचर्याणुव्रत —अपनी विवाहिता स्त्री के सिवाय अन्य सब स्त्रियों से काम सेवन का त्याग करना ब्रह्मचर्याणुव्रत है। इस व्रत का धारी अपने या अपने आधीन पुत्र पुत्रियों को छोड़ दूसरों के पुत्र पुत्रियों का विवाह नहीं करता कराता, काम सेवन के अंगों को छोड़ कर अन्य अंगों द्वारा काम क्रीड़ा नहीं करता। मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को नीच नहीं करता, भंड चेष्टायें नहीं करता, पुरुष होकर स्त्री का वेष नहीं बनाता स्वांग आदि नहीं रचता, और न ही स्त्रियों जैसी चेष्टायें करता काम की सेवन तीव्र अभिलाषा नहीं रखता, व्यभिचारिणी स्त्रियों के घर आता जाता नहीं, न उनको अपने घर बुलाता है उनके

साथ कोई व्यवहार नहीं करता, उनके रूप शृङ्गार को नहीं देखता

(५) परिग्रह परिमाण अणुव्रत —जितने से अपने परिणामों में संतोष आजावे इतना परिग्रह का परिमाण कर के उससे ज्यादह की इच्छा नहीं करना, परिग्रह परिमाण अणुव्रत है, इस व्रत का धारक आवश्यक्ता से अधिक सवारी नहीं रखता। जितने रखता है उनसे भी जरूरत से ज्यादह काम नहीं लेता, आवश्यक्ता से ज्यादह व्यर्थ ही सामान तथा चीजों को संग्रह नहीं करता; दूसरों की अधिक सम्पदा या विभूति को देखकर तथा जिन वस्तुओं को कभी देखा या सुना न हो उनको देखकर या सुनकर आश्चर्य नहीं करता; अति लोभी नहीं होता है संतोषमय जीवन व्यतीत करता है, अपने आधीन पशुओं तथा मनुष्यों से उनकी शक्ति से अधिक भार नहीं लेता न उनसे उनकी सामर्थ्य से बाहर काम लेता।

गुणव्रत —इन ऊपर लिखे पांचों अणुव्रतों को धारण करने के पीछे उन व्रतों में तरक्की करने के लिये तीन गुण व्रतों को धारण किया जाता है वे तीन गुणव्रत ये हैं—

(अ) दिग्व्रत—

लोभ आरम्भ को कम करने के लिये जीवन भरके लिये दशों दिशाओं में आने जाने की हद बांध लेना दिग्व्रत है।

इस व्रत के धारीने जितनी ऊंचाई तक जानेका प्रमाण किया किया है उससे ज्यादह ऊंचाई पर नहीं चढ़ेगा, टेढ़ा जा कर

मर्यादा से बाहर नहीं जावेगा जितने क्षेत्र का परिमाण किया हुआ है उससे ज्यादा नहीं बढावेगा, दिशाओं की नापी हुई मर्यादा को भूलेगा नहीं।

(अ) देश व्रत —घडी, घंटा, दिन, पक्ष, महीना वगैरह नियत समय तक दिग्व्रत में की हुई मर्यादा को और भी घटा लेना देश व्रत है।

इस व्रत का पालन करने वाला मर्यादा से बाहर के क्षेत्र में न आप जाता है और न किसी को भेजता है, न मर्यादा से बाहर के क्षेत्र से कोई चीज मंगाता है, मर्यादा से बाहर वाले क्षेत्र में रहने वाले को खांसी से, खखार के, कोई और आवाज से तार टैलीफोन चिट्ठी आदि द्वारा अपना अभिप्राय नहीं समझाता मर्यादा से बाहर के क्षेत्र में हाथ पांव मुंह आदि से किसी प्रकार का इशारा कर के काम नहीं कराता कंकर, पत्थर आदि फैंक कर मर्यादा से बाहर के क्षेत्र में अपना इशारा नहीं पहुँचाता।

(इ) अनर्थ दंड विरति —ऐसे पाप कार्यों का त्याग करना जिससे अपना कोई प्रयोजन सिद्ध न होता है, ऐसे व्यर्थ पाप पांच प्रकार के हैं। पापोपदेश हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति और प्रमादचर्या।

व्यर्थ हिंसा के कार्यों का उपदेश देना पापोपदेश है। हिंसा के औजार फावड़ा, कुदाल, पींजरा, जंजीर, आदि हिंसादान है। प्रकार की चीजें अपने लिये

जरूरी हो तो रखें दूसरों को दान करना तो व्यर्थ का ही है। बैठे बिठाये दूसरों की चुगली करना, बुराई करना, दूसरों का बुरा चाहना इत्यादि सब अपध्यान हैं इससे अपना तो कुछ हित होता नहीं, पाप बंध तो ही जाता है। राग, द्वेष, काम क्रोधादि को उत्पन्न करने वाली पुस्तकें, नावल किस्से कहानियां पढ़ना सुनना दुःश्रुति है। बिना प्रयोजन जल गिराना जमीन कुरेदना फूल तोड़ना, अग्नि जलाना इत्यादि क्रिया करना जिसमें हिंसा होती हो तथा बिना सावधानी के व्यर्थ इस प्रकार प्रवर्तना की जिससे जीवहिंसा हो प्रमाद चर्या है। अनर्थ दंड त्याग व्रत का पालन करने वाला ऐसे कोई व्यर्थ के कार्य कदापि नहीं करता।

वह हंसी मजाक के भंड वचन नहीं बोलता शरीर से भंड क्रिया तथा कुचेष्टा नहीं करता, व्यर्थ बकवास नहीं करता, बिना विचारे व्यर्थ ही जरूरत से ज्यादह अपने मन, वचन, काय की प्रवृत्ति नहीं करता, इससे शक्ति और समय का व्यर्थ में नाश होता है बिना प्रयोजन जरूरत से ज्यादह भोगोपभोग की सामग्री संग्रह नहीं करता।

शिक्षाव्रत—गुणव्रतों को धारण कर चार शिक्षा व्रत ग्रहण करने चाहियें,इन से चारित्र में अधिक उन्नति होती है। जिन व्रतों से मुनि धर्म की शिक्षा मिलती है अर्थात् अभ्यास होता है। उन को शिक्षा व्रत कहते हैं। ये शिक्षाव्रत चार हैं—सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण व्रत और अतिथि संविभाग।

(क) सामायिक—समस्त पाप क्रियाओं से रहित होकर

सबसे रागद्वेष छोड़ साम्य भाव को प्राप्त होकर आत्म स्वरूप में लीन होना सामायिक है।

इस व्रत का पालन करने वाला मन को, वचन को तथा कायको इधर उधर अन्यथा चलायमान नहीं होने देता, उत्साह रहित यो अनादर से सामायिक नहीं करता, सामायिक करते हुवे चित्त की चञ्चलता के कारण पाठजाप आदि को भूल नहीं जाता।

(ख) प्रोषधोपवास—प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी के पहले दिन अर्थात् सप्तमी और त्रयोदशी के दो पहर से लेकर पारने के दिन अर्थात् नवमी और पंद्रस के दिन के दोपहर तक समस्त आरंभ छोड़कर विषय कषाय तथा और सब प्रकार क आहार का त्याग करके सारे समय को धर्म सेवन में व्यतीत करना प्रोषधोपवास है।

इस व्रत का धारक बिना शोधी भूमि पर मल, मूत्र, कफ आदि नहीं डालता, बिना देखे, बिना शोधे उपकरणों को उठाता या रखता नहीं, बिना देखी बिना शोधी भूमि पर साथरा आदिक नहीं बिछाता धर्म क्रिया को उत्साह रहित होकर नहीं करता हर्ष पूर्वक करता है आवश्यक क्रियाओं को सावधानता पूर्वक करता है उनको भूल नहीं जाता।

(ग) भोगोपभोग परिमाणव्रत—भोगोपभोग की वस्तुओं की मर्यादा करके बाकी सब का त्याग कर देना। इस व्रत का पालन करने वाला पांचों इन्द्रियों के विषयों को अपने लिये

* उनमें दिन प्रति दिन राग भाव को

जो भोग पहले भोग चुका है उनको याद नहीं करता, जो भोग अब भोग रहा है उनमें आसक्त होकर लपटता के साथ नहीं भोगता, आगामी काल में भोगों को भोगने के लिये अति तृष्णा या लोलुपता नहीं रखता, वास्तव में विषयों को न भोगते हुवे भी ऐसा विचार उसके दिल में नहीं आता कि मैं भोग रहा हूँ अर्थात स्वप्न में भी भोगों को नहीं भोगता।

इस व्रत का धारक संयमी होता है, १७ नियमों को पालता है सप्त व्यसन का त्यागी होता है अभक्ष्य भक्षण का त्याग करता है

(घ) अतिथि संविभागव्रत —यश की इच्छा के बिना भक्ति और आदर भाव से धर्म बुद्धिपूर्वक मुनि, त्यागी तथा अन्य धर्मात्मा पुरुषों का आहार औषधि ज्ञान और अभय चार प्रकार का दान देना। जो साधु भिक्षा के लिये भ्रमण करते हैं और जिनके आने के लिये कोई समय या तिथि नियत नहीं है, उन्हें अतिथि कहते हैं। अपने कुटुम्ब के लिये बनाये हुवे भोजन में से भाग करके देना संविभाग है।

इस व्रत का पालन करने वाला व्रतियों को दिये जाने योग्य आहार जल औषधि को हरे पत्तों जैसे कमल पत्र आदि सचित्त पदार्थों से नहीं ढाकता। हरे पत्र आदिक पर रक्खा हुवा भोजन जल औषधि आदि उनको दान में नहीं देता। दान को आदर भाव से देता है अनादर या अभिमान से नहीं देता। इसे योग्य पात्र या दान की विधि को भूलता नहीं, किसी दूसरे दाता से ईर्षा करके दान नहीं देता।

तीन गुण व्रतों और चार शिक्षाव्रतों को मिलाकर सप्त शील कहते हैं। ये पंच अणुव्रतों की रक्षा और वृद्धि करने वाले हैं।

श्रावक को इन बारह व्रतों के अतिरिक्त छह दैनिक कर्म भी नित्यप्रति करते रहना चाहिये। इन दैनिक षट् कर्मों को श्रावक के षट् आवश्यक कर्म भी कहते हैं—षट् कर्म के नाम हैं—देवपूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय संयम तप और दान।

सल्लेखना—श्रावक का यह भी धर्म है कि अन्त समय में जब मृत्यु का निश्चय होजावे तो धर्म ध्यान के साथ प्राणों का त्याग करे। इसको सन्यास मरण समाधि मरण या सल्लेखना कहते हैं। आहिस्ता २ सब प्रकार की क्रियाओं और चिन्ताओं को छोड़कर तथा क्रमश सब खाने पीने का त्याग कर आत्म ध्यान में लीन हो समता भाव पूर्वक प्राणों का त्याग करना ही श्रेष्ठ मरण है। इस सन्यासमरण या सल्लेखना को धारण करने वाला श्रावक सल्लेखना धारण करने के बाद फिर आगे अधिक जीने की इच्छा नहीं करता रोग और कष्ट के भय से जल्दी मरने की इच्छा नहीं करता, अपने मित्रों में अनुराग नहीं रखता और न उनको याद करता है। पहले भोगे हुवे भोगों का चिन्तन नहीं करता और नहीं आगामी भोगों के मिलने की वाञ्छा ही करता है।

चारित्र की अपेक्षा देशव्रती श्रावक के ११ दर्जे हैं जो ग्यारह प्रतिमाएँ कहलाती हैं। उन्नति करते हुवे एक से दूसरी और दूसरी से तीसरी आदि ग्यारह प्रतिमा तक चढ़ना होता है और

उनसे भी ऊपर जाकर साधु होता है। आगे = की प्रतिमाओं में पहले ७ की प्रतिमाओं की क्रिया का होना भी जरूरी है।

(१) दर्शन प्रतिमा —सम्यग् दर्शन में २५ दोष नहीं लगाता, अष्ट मूल गुण का निरतिचार पालन करता है, सप्तव्यसन का त्यागी होता है। देव शास्त्र गुरु का दृढ़ श्रद्धानी होता है। अन्याय नहीं करता, दयालु होता है।

(२) व्रत प्रतिमा —श्रावक के पंच अणुव्रत तथा ३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रतों का तथा कुल बारहव्रतों का निरतिचार पालन करता है।

(३) सामायिक प्रतिमा —व्रती श्रावक सवेरे, दोपहर और शाम को नियत समय के लिये नियम पूर्वक सामायिक करता है।

(४) प्रोषध प्रतिमा —महीने के चारों पर्वों में अर्थात् प्रत्येक अष्टमी चतुर्दशी को १६ पहर का उपवास करना।

(५) सचित्त त्याग प्रतिमा —इस प्रतिमा का धारी हरी वनस्पति अर्थात् कच्चे फल फूल बीज आदिक नहीं खाता— प्रासुक आहार और जल को ग्रहण करता है।

(६) रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा.— रात्रि के समय कृत, कारित, अनुमोदना रूप से सर्व प्रकार के आहार का त्याग करना।

(७) ब्रह्मचर्य प्रतिमा —अपनी पराई किसी भी प्रकार की स्त्री से भोग नहीं करना, अखंड निर्दोष ब्रह्मचर्य पालना।

(८) आरम्भत्याग प्रतिमा—गृहस्थ सम्बन्धी सर्व प्रकार की क्रिया तथा आरम्भ का त्याग करना, सन्तोष धारण करना।

(९) परिग्रह त्याग प्रतिमा—दस प्रकार के बाह्य परिग्रह से ममता को त्याग कर सन्तोष धारण करना।

(१०) अनुमति त्याग प्रतिमा—किसी प्रकार के भी गृह सम्बन्धी संसारी कार्यों में सलाह मशवरा नहीं देना। लाभ अलाभ, हानि वृद्धि, दुःख सुख आदि समस्त कार्यों में हर्ष विषाद करके अनुमोदना नहीं करना। जो कोई भोजन को बुलावे उसके यहां भोजन कर आना—ऐसा नहीं कहना कि अमुक भोजन हमारे लिये बनाओ, जो कुछ श्रावक जिमावे सो जीम लेना।

(११) उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा—गृहस्थ से उदासीन होकर घर छोड़ वन, मठ आदि में तपश्चरण करते हुवे रहना, भिक्षा वृत्ति से भोजन करना और खण्ड वस्त्र धारण करना। इस प्रतिमाधारी के दो भेद क्षुल्लक और ऐलक। क्षुल्लक—अपनी दाढ़ी आदि के केश कतरे, कैंची आदि से कटवाते हैं लंगोटी और खण्ड वस्त्र रखते हैं, बैठकर अपने हाथ में या किसी बर्तन में भोजन करते हैं ऐलक जो क्षुल्लक से ऊंचे दर्जे के होते हैं केश लोंच करते हैं। केवल लंगोटी रखते हैं। मुनि की भांति वन में बैठे रहते हैं, और अपने हाथ में ही भोजन करते हैं किन्तु बर्तन में नहीं करते।

जो भव्य जीव मुनि धर्म को धारण करने के लिये

हैं, उन्हें चाहिये कि यथाशक्ति ग्रहस्थ धर्म का निर्दोष पालन करें। और अपने जीवन को सफल बनावें।

वास्तव मे चारित्र ही धर्म है जो समता भाव है उसको ही धम कहा गया है राग द्वेप मोह रहित जो आत्मा का परिणाम है वही समभाव है और वही चारित्र है, जो सम्पर्क चारित्र की आराधना करते हैं वे धन्य हैं जो कि पापों को जीतते हैं, ध्यानारूढ होते हैं वही वीतराग चारित्र को पाकर परम पद को प्राप्त होते हैं। सम्यक् चारित्रवान की पूजा इन्द्रादि देव भी करते हैं जो चारित्र विहीन हैं, उनकी इस लोक में निन्दा हुआ ही करती है, उनका परलोक भी कभी नहीं सुधरता। धन्य हैं वे महात्मा जिन्होंने रागद्वेष परिणामों को बिडार दिया है जो समस्त परिग्रह का त्याग कर व्रतों में दृढ हो निर्मल चित्त से तपश्चरण करते हैं, वे ही सच्चे वीर हैं वे ही वैराग्यवान् हैं, वे मोक्ष सुख की भावना रखते हैं सर्व परिग्रह से मुक्त हैं वे ही धन्य हैं।

ऐसे चारित्र की महिमा को भली भांति समझ धर्म का आचरण करना ही श्रेष्ठ है। धम का आचरण करो, मृतक समान मत बनो, जिन महानुभावों के चित्त में सच्चा धम बसा है, उनही का जीवन सफल है। जो धर्माचरण करने वाले हैं वे मरने पर भी अमर हैं और जो पाप के मार्ग में चलने वाले हैं वे जीते हुये भी मृतक समान हैं।

प्रश्नावली

१—निश्चल चारित्र किसे कहते हैं ?

२—अणुव्रत किसे कहते हैं ? अणुव्रत कितने हैं ? उनके नाम बताओ और उनमें से प्रत्येक की व्याख्या अपने सरल शब्दों में करो।

३—क्या एक अणुव्रती श्रावक नीचे लिखी बातें करेगा ?

(अ) ऊँट या घोड़े पर शक्ति से अधिक बोझ लादना।

(आ) दूसरों के दोष प्रगट करना।

(इ) चुङ्गी का महसूल नहीं देना।

(ई) गणिका का नाच देखना।

(उ) बहुत वस्तुओं का संग्रह करना।

४—गुणव्रत किसे कहते हैं ? ये कितने हैं ? उनके नाम बताओ और प्रत्येक का स्वरूप भी समझाओ।

५—इनको गुणव्रत क्यों कहते हैं ?

६—शिक्षाव्रत से क्या समझते हो व कितने हैं ? प्रत्येक का स्वरूप समझाओ।

७—अनर्थ दण्ड विरति और सामायिक व्रत का स्वरूप समझाओ

८—भोग और भोगोपभोग के पदार्थों से तुम क्या समझते हो।

९—सल्लेखना से क्या समझते हो ? सल्लेखना व्रत कैसे पाला जाता है।

१०—प्रतिमा से क्या समझते हो, प्रतिमाएँ कितनी होती हैं ?

११—क्षुल्लक और ऐलक किसे कहते हैं ?

१२—सम्यक् चारित्र की महिमा अपने शब्दों में वर्णन करो

पाठ

व्यर्थ-जीवन

(१)

जो हैं न विद्यावान नर धर्मी नहीं दानी नहीं,
सत्कर्म का कर्त्ता नहीं गुणवान भी ज्ञानी नहीं।
वह नर सदा संसार में बस। भूमि का ही भार है,
नर रूप में प्रगटित हुआ मृग का विकट अवतार है॥

(२)

शुभ शक्ति के रहते हुये उपकार नहिं जिसने किया
होते हुये भी सम्पदा नहिं दान दीनों को दिया।
सुन आर्त्तवाणी बन्धु की जिसका नहिं पिघला हिया,
सेवा न की यदि लोक की तो व्यर्थ वह जग में जिया॥

(३)

मैं कौन हूं? गुण कौन मेरे और क्या अब प्राप्त है,
किस कार्य हित मानव हुआ मैं कौन सच्चा आप्त है।
है विश्व सेवा वस्तु क्या जिसने विचार किया नहीं,
हो पै मनुज भी लोक में वह हाय। हाय। जिया नहीं॥

(४)

आहार या आराम ही जिसको सदा अति इष्ट है
गौरव स्वय ही हाथ से करता अहो वह नष्ट है।
आये यहां जैसे अहो वैसे चले वे जायेंगे,

अपकीर्ति की हो पोटरी निज शीश पर ले जायेंगे ॥

(४)

संसार में आके तुम्हें सत्कर्म करना चाहिये,
पर की व्यथा सप्रेम सादर शीघ्र हरना चाहिये।
यह शुभ अशुभ ही कर्म तो रहता सदा है साथ में,
परलोक में जाता यही आता न कुछ भी साथ में ॥

प्रश्नावलि

१—कैसा मनुष्य भूमि का भार समझा जाता है ?
२—किस मनुष्य का जीवन संसार में व्यर्थ गिना जाता है ?
३—अपकीर्ति का पात्र कौन होता है ?
४—मनुष्य जन्म पाकर क्या करना चाहिये।

लव कुश

सावन का महीना था, चारों ओर प्रमोद बरस रहा था, स्त्रियों के मधुर गीत स्वर हृदय में गुद गुदी पैदा कर रहे थे। सर्वत्र हिंडोले के दृश्य बड़े ही कमनीय मालूम होते थे। बाल बच्चों से लेकर बड़े बूढ़े सभी के अन्तर में सावन अपना अनुराग राग बखेर रहा था। ये सभी सावन की प्रणय कल्लोलों में तल्लीन थे और थे मलमस्त।

सीता के भी इसी समय नौ मास गर्भ के पूर्ण होगये। उनने इन्हीं प्रमोद भरे दिनों में अपनी पुण्य मय कुक्षि से दो पुत्र प्रसव किये। पुर में और अधिक आनन्द मनाया जाने

लगा। स्थान २ पर रोशन चौकियां और शहनाइयां बजने लगीं। प्रजाजन कुमारों की जय कामना करने लगे, वे दोनों कुमार भाग्यशाली तथा अनुपम तेज पूर्ण थे।

धीरे धीरे समय निकलने लगा। सीता अपने युगल बालकों की बाल लीला में अपने पति वियोग को भूल गई, वह अपना परित्याग भूल गई और भूल गई वह भयानक अरण्य। सारा परिवार इनकी बाललीला से प्रमुदित था। वे दोनों भाई दोज के चन्द्रमा से दिनों दिन बढ़ने लगे। मामा वज्रजंघ ने इनके पढ़ने की व्यवस्था करदी। और फिर कुछ समय बाद वे दोनों भाई पढ़कर विद्वान होगये।

अब इन के यौवन के दिन थे। धीरे २ इनकी सुप्त कामनायें जाग रही थीं। शरीर में नवीन स्पंदन होने लगा था और मन नवीन २ कल्पनाओं की सृष्टि में उलझने लगा था। एक दिन विचार होते ही वन क्रीड़ा के लिये मामा वज्रजंघ से आज्ञा ले वन की ओर चल पड़े।

अरण्य की सुन्दरता में वे अपनी सुन्दरता से मधुर मधुर बखेर रहे थे और उसके सौन्दर्य की कर रहे थे लूट। चारों ओर मधु मास का बिखरा लावण्य इन्हें उत्साहित कर रहा था। वे अपनी लीलाओं पर अपने ही आप मुग्ध थे। बहुत कुछ खेल कूद कर वे एक सघन लता कुंज में कुछ देर आराम करने के लिये बैठ गये। उनका बैठना ही था कि उधर आते हुवे महाराज नारदमुनि पर उनकी दृष्टि पड़ी—वे उठ खड़े हुवे। दोनों ने

उन्हें भक्ति पूर्वक प्रणाम किया। "राम लक्ष्मण की तरह तुम्हारा यश विश्व में व्याप्त हो" नारद ने उन्हें आशीर्वाद दिया।

राम लक्ष्मण कौन हैं महाराज।" उन्होंने उत्सुकता से पूछा।

"क्या तुम नहीं जानते कुमार ?"

"नहीं तो देव। हम नहीं जानते, क्या आप बता सकेंगे वे कौन हैं ?' नम्रता से कुमारों ने पूछा।

'हां क्यों नहीं बताऊंगा कुमार।' नारद ने सारा हाल कुमारों से कह सुनाया वे बोले—तुम्हारी मां का परित्याग रामने केवल अपवाद से ही कर दिया था। 'केवल अपवाद से ?'

'हां"।

"बिना परीक्षा लिये ?"

'हां"

इस प्रकार नारद का उत्तर सुनते ही कुमार क्रोधित हो उठे। नेत्र लाल हो गये। उन्होंने होंठ चबाकर कहा—अच्छा हम भी देखेंगे वे कितने बहादुर हैं। हमारी मां का अपमान। वे उसी समय उठकर नगर की ओर चल पड़े। उन्होंने प्रतिज्ञा करली कि हम अपनी मां के अपमान का बदला उन से अवश्य लेंगे। चाहें कुछ भी क्यों न हो।

प्रश्नावलि

१—लवकुश कौन थे ?

२—इनका जन्म कहां हुवा ?

३—इनका पालन पोषण किसने किया।

४—लवकुश और नारद का क्या वार्तालाप हुआ ?
५—नारद कौन होता है ?

राम लक्ष्मण और लवकुश का युद्ध

दि० जैन कथाङ्क परित्यक्ता से—
(ले० प० राजेन्द्रकुमार जैन 'कुमरेश')

सीता बैठी हुई कुछ सोच रही थीं, पास ही उनकी भाभिय हँसी मजाक कर रही थी—कुमार सीधे यहां आ पहुँचे और उन क्रोध भरे स्वर म बोले—मा। क्या राम न तुम्हारा अपमान किया है।"

"नहीं तो" सीता ने व्यथित स्वर में कहा।

'क्यों उन्होंने तुम्हारा परित्याग नहीं किया ?"

'हा' सीता के मुह से निकल गया।"

"तो हम उनसे इस अपमान का बदला अवश्य लेंगे मा,'

'नहीं बेटा, यह क्या कह रहे हो, इसमें मेरा अपमान क्या है।' रहने दो मा। हम समझ गये, तुम हमें युद्ध से रोक चाहती हो। लेकिन अब हम अवश्य ही उनसे बदला लेकर रहें चाहे कुछ हो।'

वे यह कह कर बाहर चले गये।

मामा से उन्होंने सारा हाल कह सुनाया। युद्ध का निश्च हो गया। कुमार बदला लेने के लिये प्रतिक्षण व्यग्र हो रहे थे

सरयू के किनारे दोनों ओर की सेनायें आडटीं, युद्ध प्रार

ो गया। मारकाट खून खच्चर होने लगा, लेकिन परिणाम कुछ
हीं दोनों ओर के अविनाशकों के शस्त्र बेकार से हो रहे थे।
कसी का वार किसी पर भी नहीं चलता था।

लक्ष्मण युद्ध करते २ थकसा गया। राम विचार सागर में
ोते लगाने लगे। हम बलभद्र नारायण नहीं हैं शायद ये ही हों,
सीलिये तो हमारा वार काम नहीं देता।" वे कांप गये।

लक्ष्मण ने अंतिम शस्त्र चक्र चलाना चाहा। उसने उसे हाथ
में उठा लिया, वह चलाना ही चाहता था कि —

"ठहरो" किसी के मधुर स्वर उसके कान में पड़े। उसने
आँख उठा कर देखा। सामने से नारद महाराज आ रहे थे।
लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम किया। और व्यथित स्वर में बोला—
देव आज शस्त्र काम नहीं करते, क्या बात है। मैं तो बड़ा परे
शान हूँ।'

"हां लक्ष्मणजी, आज शस्त्र काम नहीं देंगे।'

"क्यों?' जानते हो ये कौन हैं? जिन से तुम युद्ध कर रहे हो।

"नहीं

यह तुम्हारे भतीजे, राम के पुत्र लव कुश हैं समझे। नारद
ने आगे भारते हुवे कहा—

लव-कुश मेरे पुत्र? राम ने शस्त्र फेंक दिये। वे हर्षाकुल
होकर पुत्रों की ओर दौड़े, युद्ध बंद हो गया।

सीता विमान में बैठी हुई पुत्रों की वीरता देख रही थी। वह
उनके कौशल पर मग्न थी। राम को पुत्रों की ओर आते देख कर,

अपने स्थान पर चली गई। जब लव और कुश ने देखा कि राम उन्हीं की ओर आ रहे हैं तो उन्होंने भी शस्त्र छोड़ दिये और दौड़ कर पिता के चरणों में गिर पड़े। राम ने उठा कर उन्हें हृदय से लगा लिया। उनकी आंखों से दो बूंद आंसू ढलकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

चारों ओर आनंद मनाया जाने लगा। दोनों दल मिलकर एक हो गये। तब बड़े प्रेम से रामपुत्रों को राजधानी ले चले। पुत्रों की खुशी में दरबार लगा। महाराज राम ने बड़े आदर से अपने पास बैठाया।

लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, वज्रजंघ आदि सब अपने स्थान पर बैठ गये। उन सब की एक ही इच्छा थी। सीता को बुलाने के लिए महाराज से आज्ञा प्राप्त करना, सब का इशारा पाकर सुग्रीव ने आकर कहा। महाराज। अब भी महारानी सीता को बुलाना उचित है।

सुग्रीव ! मुझे सीता पर पहले कोई सन्देह नहीं था, परन्तु जिस कारण उसका परित्याग किया था, वही कारण आज भी सामने है। यदि किसी उपाय से उसकी पवित्रता प्रगट हो जावे तब ही उसका यहाँ आना उचित होगा।

यह तो आपके ऊपर निर्भर है, महाराज चाहें तो उनकी परीक्षा ले सकते हैं।

परीक्षा, यह ठीक है, तब तुम सीता को यहां ले आ सकते हो।

जो आज्ञा देव। सुग्रीव उसी समय परित्यक्ता सीता को लेने चले गये दरबार बरखास्त हो गया।

आज सीता की परीक्षा है। नगर के समस्त नर नारी उस बड़े से अग्नि कुंड के समीप एकत्रित होने लगे, अग्नि कुंड की प्रज्वलित लपटों को देख कर सभी का हृदय काँप रहा था बच्चे रो रहे थे और युवतियाँ भयभीत—

यहाँ राम लक्ष्मण सभी व्याकुल प्रतीत होते थे, परन्तु सीता बड़ी शान्ति और धैर्य से प्रभु का ध्यान कर रही थी। उसके हृदय पर तनिक भी भय या मलीनता की रेखा न थी। सीता ध्यान समाप्त कर खड़ी हो गई। आप अग्नि की ओर देखकर बोली "अग्नि देव! यदि मैंने रामचन्द्रजी के सिवाय सोते, जागते, उठते-बैठते, मन से वचन से, काय से किसी अन्य पुरुष से पति भाव किया हो तो मेरे इस अधम शरीर को भस्म करदो" ऐसा कहकर हँसते हँसते अग्नि कुंड में कूद पड़ी, सब लोग वेदना से चीख उठे। परन्तु एक ही क्षण में उन लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उन्होंने देखा कि अग्नि कुंड की जगह निर्मल जल परिपूर्ण सुन्दर सरोवर और कमल सिंहासन पर सीता बैठी हुई है, चारों ओर आकाश से सीता की जय ध्वनि गूँज उठी।

और क्या किया?

अब सीता की पवित्रता में किसी को सन्देह न रहा था। रामचन्द्र भी प्रेम से सीता के पास आ पहुँचे और स्नेह भरे स्वर में बोले सीते! आप साक्षात् देवी हैं, आपका परित्याग कर

वास्तव में मैंने बड़ी भूल की थी।

'नहीं नाथ। आप यह क्या कह रहे हैं, सीता ने बात काट-कर कहा—यह आपकी भूल न थी, यह था मेरे किसी पूर्वोपार्जित कर्म का परिणाम।

'अब घर चलिये सीते।

'नहीं देव। अब यह परित्यक्ता कभी घर न जा सकेगी।

"क्यों'?

इस क्यों का उत्तर सीता ने अपने केशों का लोंच करके दिया। राम, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि सब ठगे से रह गये। वह आर्यिका होगई। परित्यक्ता सीताने अब अपने जीवन को सार्थक बनाने का उद्यम उपक्रम कर लिया।

प्रश्नावली

(१) लवकुश और राम लक्ष्मण के युद्ध का वर्णन करो।

(२) नारद ने राम लक्ष्मण से क्या कहा।

(३) युद्ध बंद होने पर लव और कुश को राम कहां ले गये?

(४) सीता की अग्नि परीक्षा का वर्णन करो।

(५) सीता ने अग्नि में प्रवेश करते समय क्या परीक्षा की थी।

(६) अग्नि परीक्षा के बाद सीता राम के महल में क्यों न आई?



सोलह कारण भावना

(श्री भूधरदास कृत)

दर्शन विशुद्धि भावना

(१)

चौपाई—आठ दोष मद आठ मलीन, छह अनायतन शठता तीन।
ये पचीस मल वर्जित होय, दर्श विशुद्धि भावना सोय॥

विनय सम्पन्नता भावना

(२)

रत्नत्रय धारी मुनिराय, दर्शन ज्ञान चरित समुदाय।
इन की विनय विषय परवीन, दुतिय भावना सो अमलीन॥

शील व्रतेष्वनतिचार

(३)

शील धारि धारै समचेत, सहस अठारह अंग समेत।
अतीचार नहिं लागै जहा, तृतिय भावना कहिये तहा॥

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग

(४)

आगम कथित अरथ अवधार, यथा शक्ति निज बुधि अनुसार।
करे निरंतर ज्ञान अभ्यास, तुरिय भावना कहिये तास॥

संवेग भावना

(५)

दोहा—धर्म धर्म के फल विषे, परतेँ प्रीति विशेष।
यही भावना पंचमी, भिखो जिनागम देख॥

शक्तितस्त्याग भावना

(६)

चौपाई—औषधि अभय ज्ञान आहार महादान ये चार प्रकार
शक्ति समान सदा नित दहै, छठी भावना धारक वहै ॥

शक्तितस्तप भावना

(७)

अनशन आदि मुकति दातार, उत्तम तप बारह परकार ।
बल अनुसार करै जो कोय, सो सातमी भावना होय ॥

साधु समाधि भावना

(८)

यति मन को कारन पाय, विघन होत जो करै सहाय ।
साधु समाधि कहावे सोय, यही भावना अष्टम होय ॥

वैय्यावृत्य भावना

(९)

दशविधि साधु जिनागम कहे, पथ पीडित रोगादिक गहे ।
तिनकी जो सेवा सतकार, यही भावना नौमी सार ॥

अरहत भक्ति भावना

(१०)

परम पूज्य आतम अरहत, अतुल अनत चतुष्टय वंत ।
तिनकी थुति नित पूजा भाव, दशमी भावना भव जल नाव ॥

आचार्य भक्ति भावना

(११)

जिनवर कथित अर्थ अवतार, रचना करें अनेक प्रकार।
आचारज की भक्ति विधान, एकादशमि भावना जान॥

बहुश्रुतिवन्त भक्ति भावना

(१२)

विद्यादायक विद्यालीन, गुण गरिष्ठ पाठक परवीन।
तिनके चरण सदा चित रहै, बहु श्रुति भक्ति बारमी यहै॥

प्रवचन भक्ति भावना

(१३)

भगवत भाषित अर्थ अनूप, गणधर ग्रथित ग्रथ रसरूप।
सदा भक्ति धरते अमलान, प्रवचन भक्ति तेरमी जान॥

षडावश्यकापरिहाणि भावना

(१४)

षट् आवश्यक क्रिया विधान तिन की कबहूं न करिये हान।
सावधान वरते थिर चित्त, सो चौदहवीं परम पवित्त॥

मार्ग प्रभावना भावना

(१५)

कर जप तप पूजा व्रत भाव, प्रगट करे जिन धर्म प्रभाव।
सोई मारग परभावना, यही पन्द्रहमी भावना॥

वात्सल्य भावना

१६)

प्यार प्रकार सघ सों प्रीति, राखै गाय वत्स की रीति।
यह सोलहवीं सब सुखदान, प्रवचन वात्सल्य अभिधान ॥

दोहा—सोलह कारण भावना, परम पुण्य को खेत।
भिन्न भिन्न अरु सोलहों, तीर्थंकर पददेत ॥

प्रश्नावलि

(१) इन सोलह कारण भावना के रचयिता कौन हैं ? इनका संक्षिप्त परिचय अपने सरल शब्दों में बताओ।

(२) सोलहकारण भावनाओं के नाम बताओ। इनका महत्व क्या है ?

(३) दर्शन विशुद्धि भावना का स्वरूप समझाओ। इस भावना का कोई विशेष महत्व है क्या, यदि है तो क्या और क्यों ?

(४) रत्नत्रय किसे कहते हैं ? विनय सपन्नता भावना का लक्षण बताइये।

(५) शील व्रतेष्वनतिचार भावना किसे कहते हैं ?

(६) अतिचार से आप क्या समझते हैं ?

(७) शील के अठारह हजार भेद कैसे होते हैं ?

(८) अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावना का स्वरूप समझाओ।

(९) संवेग भावना किसे कहते हैं ?

(१०) छठी भावना का क्या नाम है, उसका स्वरूप बताओ।

(११) दान कितने प्रकार का होता है और कौन कौनसा ?

(१२) तप कितने प्रकार का होता है? तप किस हद तक करना चाहिये?
(१३) साधु समाधि भावना किसे कहते हैं?
(१४) वैयावृत्य से आप क्या समझते हैं?
(१५) दश प्रकार के साधु कौन से होते हैं?
(१६) सेवा का महत्त्व बताओ।
(१७) अरहंत भक्ति भावना का स्वरूप बताओ।
(१८) अरहंत कौन होते हैं? और उनकी भक्ति से हमें क्या लाभ होता है?
(१९) आचार्य कौन होते हैं? उनकी भक्ति कैसे होती है और उससे हमें क्या लाभ होता है?
(२०) बहुश्रुतवन्तभक्ति किसे कहते हैं? बहुश्रुतवन्त कौन होते हैं, उनके मुख्य गुण कौन २ से हैं।
(२१) प्रवचन से आप क्या समझते हैं? प्रवचन की सच्ची भक्ति क्या है?
(२२) मुनियों के षट् आवश्यक कौन से हैं और गृहस्थों के कौन से?
(२३) मार्गप्रभावना किसे कहते हैं?
(२४) सच्ची प्रभावना कैसे हो सकती है?
(२५) सच्ची प्रभावना के कुछ साधन सुझाओ?
(२६) वात्सल्य किसे कहते हैं?
(२७) परस्पर में वात्सल्य कैसे बढ़ाया जा सकता है?
(२८) अन्तिम दोहे का अर्थ सरल शब्दों में बताओ।

दक्षिण भारत के प्रथम सम्राट्
श्री बाहुबलि स्वामी

भगवान् ऋषभदेव के पुत्र बाहुबलि दक्षिण भारत के प्रथम सम्राट् थे, उन्होंने अपने पिता द्वारा सुरम्य देश का शासक होना स्वीकार किया था। वह बड़े बलशाली, तेजस्वी और स्वराभिमानी महापुरुष थे। उनके प्रत्येक अंग से अपूर्व तेज, उत्साह और वीरत्व टपकता था। वह जितने दृढ़ प्राणी थे, उतने ही स्वतंत्रता के उपासक। वह इतने सुन्दर थे कि उन्हें संसार ने प्रथम काम देव माना। उनकी राजधानी पोदनपुर नगर में थी, वह प्रजा का नीति पूर्वक पालन करते थे। अपने समय के सुन्दर और श्रेष्ठ शासक को पाकर प्रजा अतीव संतुष्ट रहती थी। उनकी पवित्र स्मृतियां आज भी प्रजा के हृदय मंदिर में सम्मान को प्राप्त हैं। यही कारण है कि दक्षिण में आज भी वह "कामदेव" और "गोमट्ट" नाम से पुकारे जाते हैं और वह निस्सन्देह कामदेव ही थे, परन्तु आश्चर्य तो यह है कि कामदेव होते हुये भी वे मोह ममता और संसार के विषय भोगों से परे थे।

मध्यान्ह का समय था सम्राट् बाहुबलि राज्य सिंहासन पर विराजमान थे। इसी समय भरत चक्रवर्ती के एक दूत ने आकर उन्हें समाचार सुनाया और कहा "महाराज। भरत चक्रवर्ती ने पृथ्वी जीत ली है उन्हें अपने चक्रवर्ति पद को सार्थक बनाने के लिये यह जरुरी है कि आप उनकी आन मान लें। पर स्वत्वा

भिमानी सम्राट् ने यह बात आत्माभिमान के विरुद्ध समझी और भरत महाराज को युद्ध करने के लिये निमंत्रण भेज दिया। बाहुबलि का सन्वाद सुनकर चक्रवर्ति का हृदय क्रोध से कांपने लगा और कहने लगा कि भारत विजयी चक्रवर्ति का प्रभुत्व स्वीकार नहीं करना चाहता तो फिर हमें युद्ध करना ही होगा। बस क्या था चतुरंगी सेना लेकर पोदनपुर जा पहुँचा। इधर बाहुबलि भी शस्त्रास्त्र से सुसज्जित हो सेना सहित रण में आ डटे। दोनों शासकों की आज्ञा की ही देरी थी कि अनेक नर मुण्ड कट कर भूमि पर गिरते दिखाई देते किन्तु दोनों ओर के राजमंत्रियों के हृदयों में यह सद्ज्ञान जाग्रत हुवा कि ये दोनों नर शार्दूल, चरम शरीरी, अवेध्य और मोक्षगामी हैं, इनका तो बिगड़ना ही क्या है, अनेक सैनिक वृथा मारे जायेंगे। अब इस महान् हिंसा का रोका जाना आवश्यक है। यह उचित होगा कि दोनों महापुरुष ही परस्पर युद्ध करके अपनी शक्ति का निर्णय करलें।

मन्त्रियों की सलाह ठीक थी, दोनों ही नर सिंहों में भाग्य परीक्षा आरंभ हो गई और महाबलि बाहुबलि ने भरत को नेत्र युद्ध और जल युद्ध में पराजित कर दिया। मन्त्रियों के पहले निश्चय के अनुसार दोनों भाइयों में देवताओं को भी चकित कर देने वाला मल्ल युद्ध आरम्भ हो गया। बाहुबलि का पौरुष महान था, भरत उसे पा न सके। अपने इस अपमान से वह इतने क्षोभित हुवे कि उन्होंने अपने भाई पर चक्ररत्न चला दिया

परन्तु चक्ररत्न बाहुबलि का कुछ बिगाड़ न सका, वे चरम शरीरी थे। इधर भरत चक्रवर्ति की स्वार्थ परता को देखकर महा पराक्रमी बाहुबलि का हृदय सांसारिक वासनाओं से विरक्त हो गया।

वह विचारने लगे "अहो! संसार में अनेक कुकृत्य, अन्याय और पापों को उत्पन्न करने वाली इस राज्य लक्ष्मी को धिक्कार है। वेश्या के समान यह राज्य लक्ष्मी किम्पाक फल सदृश है। जिस प्रकार विषफल देखने में सुन्दर, चखने में मीठे, किन्तु परिणाम में प्राण घातक होते हैं; वैसे ही इन्द्रिय भोग भोगते समय तो अच्छे जान पड़ते हैं, किन्तु वे बड़े दुःख दायक हैं। इस प्रकार वैराग्य भावना को चिन्तवन करते हुवे राज्य लक्ष्मी को ठुकरा कर सम्राट् बाहुबलि महायोगी के रूप में दिगम्बर मुनि होगये। भरत उन को नमस्कार कर अपनी राजधानी अयोध्या चले आये। बाहुबलि के पुत्र महाबल राज करते हुए पोदनपुर की प्रजा का पालन करने लगे।

वह योगी बाहुबलि अपने आत्म ध्यान में लीन हो घोर तपश्चरण करने लगे। कायोत्सर्ग शान्तमुद्रा में ध्यानारूढ़ होगये। ग्रीष्म ऋतु की प्रचण्ड ज्वालायें, शीत काल की शीतलता, वर्षा ऋतु की मूसलाधार वर्षा, उनके शरीर पर पड़ रही थी। उनके शरीर के सहारे सर्पों ने निवास बिल बना लिये थे। पैरों के समीप कीड़ियों ने बाम्बियां बनाली थीं, लतायें उनके शरीर पर चढ़ आई थीं, परन्तु वह महा योगी निर्भय थे। घोर तपश्चरण

के प्रभाव से उनके शरीर में अनेक ऋद्धियों ने निवास स्थान बना लिया था।

उधर भरत महाराज को भी भाई के शुभ दर्शनों की इच्छा हुई। जिस दिन राजर्षि बाहुबलि का व्रत पूर्ण होने को था उसी दिन चक्रवर्ति समस्त राज परिवार सहित पोदनपुर के बाहर उद्यान में जा पहुँचे। बड़े प्रेम और भक्ति भाव से उन्होंने राजर्षि की वन्दना की। बाहुबलि निराकुल हुवे। उसी समय ध्यान की प्रचण्ड ज्वाला में कर्म शत्रुओं को भस्म कर योगिराज बाहुबलि ने केवल ज्ञान को प्राप्त किया देवों ने उत्सव मनाया भरत महाराज ने केवलज्ञान की पूजा की। भगवान बाहुबलि ने संसार में भटकने वाले प्राणियों को धर्म अमृत का पान कराया। जगह जगह देश में विहार करके सत्य, संयम शील, दया, प्रेम और अहिंसा का प्रचार किया। अन्त में विहार करते हुवे बाहुबलि स्वामी कैलाश पर्वत पर पहुँचे, वहां पर उन्होंने पूर्ण ध्यान के बल से मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त किया।

—पं० मैंयालाल जैन, न्यायतीर्थ "दि० जैन कथाङ्क"

प्रश्नावलि

(१) बाहुबलि कौन थे ? उनके और क्या २ नाम थे ?

(२) बाहुबलि कैसे राजा थे और उनमें क्या विशेष गुण थे ?

(३) भरत चक्रवर्ति का दूत क्या सन्देश लेकर बाहुबलिजी के

पास गया ?

(४) क्या बाहुबलिजी ने उस संदेश को स्वीकार कर लिया यदि नहीं तो क्या उत्तर दिया और क्या किया ?

(५) मन्त्रियों ने युद्ध किस विचार से नहीं होने दिया ? युद्ध के बदले उन्होंने क्या सलाह दी ?

(६) मल्लयुद्ध किसे कहते हैं ?

(७) भरत और बाहुबलि में से युद्ध में कौन जीता और क्यों ?

(८) बाहुबलिजी ने राज पाट को क्यों त्याग दिया ?

(९) बाहुबलिजी ने कैसा तपश्चरण किया और उनका तपश्चरण क्यों प्रसिद्ध है ?

(१०) बाहुबलिजी ने मुनि अवस्था में लोगों का क्या कल्याण किया और अंत में मोक्ष कहां से पाई ?

(११) इस चरित्र से क्या शिक्षा मिलती है ?

सद् ग्रहस्थ

संसार में आदर पाने के लिये तथा अपने जीवन को सफल और उपयोगी बनाने के लिये एक मनुष्य को गुणवान होना चाहिये, सर्वत्र ही गुणों का आदर होता है। नीचे संक्षेप से ऐसे कुछ गुणों का वर्णन किया जाता है कि जिनको यथायोग्य धारण करके एक मनुष्य सद्ग्रहस्थ कहलाने का अधिकारी हो सकता है।

एक सद्ग्रहस्थ न्याय पूर्वक धन उपार्जन किया करता है।

सदाचार रूप उपायों से जो धन कमाया जाता है, वह न्याय से कमाया हुआ धन कहलाता है। वह इस लोक और परलोक दोनों में सुख के देने वाला होता है। उसको अपनी इच्छानुसार खर्च करने में या किसी को देने में कोई भय नहीं होता। निन्द्य कामों से कमाया धन बहुत दिनों तक नहीं टिकता, जो चोरी, झूठ बेईमानी आदि से धन कमाता है, राजा भी उसे दण्ड देता है, लोक में उसका अपमान होता है, वह सदा भय भीत रहता है उसे नाना प्रकार के कष्ट तथा वेदनायें भुगतनी पड़ती हैं। न्याय से धन कमाने वाला अपनी आवश्यकताओं को कम रखता है, वह अपना खर्च अपनी आमदनी के अनुसार करता है, व्यर्थ व्यय नहीं करता। वह विवाह शादी में झूठी वाह वाह के लिये रुपया नहिं लुटाता, उसका जीवन सादा और सन्तोषमय होता है। वह सबके साथ प्रेम पूर्वक व्यवहार करता है, किसी को ठगता नहीं, लूटता नहीं, विश्वासघात नहीं करता, घूस लेता नहीं, जालसाजी नहीं करता, मदकषायी होता है।

एक सद्गृहस्थ सद्गुणों का उपासक होता है, सदाचारी सज्जन होता है, उदार हृदय होता है, हरएक काय चतुराई से सावधानता पूवक करता है। गुणीजनों का भक्त होता है, गुणीजनों को देख उसके हृदय में हर्ष और प्रेम का स्रोत उमड़ आता है, गुरुजनों की वह विनय करता है, यथायोग्य उनकी सेवा, सुश्रुषा तथा वैयावृत्य करने के लिये तैयार रहता है।

सबके साथ प्रेम पूर्वक रहता है, घृणा किसी से नहीं करता, सबका यथायोग्य आदर सत्कार करने से कभी नहीं चूकता।

सद्गृहस्थ मिष्ट भाषी, सत्यवादी होता है। वह अप्रिय कटुक और कठोर शब्द अपने मुख से नहीं कहता दूसरों की निन्दा नहीं करता निन्दा करना बड़ा पाप है। जो दूसरों की निन्दा करता है वह नीच गोत्र कर्म का बंध करता है, उसका अपयश सर्वत्र फैल जाता है। हितमित वचन कहने वाले का सुयश होता है, उसका कोई भी शत्रु नहीं होता।

सद्गृहस्थ को चाहिये कि धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों का साधन यथायोग्य रीति से करे, समय पर धर्म का पालन करे, समय पर न्याय नीति पूर्वक परिश्रम करके धन कमावे, अपने कमाये हुवे धन से योग्य भागों का भोगे, अपने कुटम्ब का पालन पोषण करे। अपनी सन्तान को शिक्षित बनावे, सदाचारी बनावे, चारों प्रकार के दान में वित्त समान रुपया देवे। न तो कंजूस बन और नहीं ऐसा व्यर्थ व्यय करे कि जिससे धन लुटाकर रंक ही होजावे। इन पुरुषार्थों का सेवन इस प्रकार किया जावे कि जिससे एक के सेवन करते हुवे दूसरों के सेवन मे बाधा न आवे।

एक सद्गृहस्थ सदाचारिणी, दयालु, धर्मात्मा, पतिव्रता और सुशीला स्त्री के साथ विवाह करता है जो स्त्री पति से प्रेम पूर्वक व्यवहार करती है, पति की आज्ञानुसार चलती है अपनी

सन्तान का भली भांति पालन पोषण करती है वही गृहिणी कहलाती है, वही धर्म पत्नी है। ऐसी स्त्री घर को स्वर्ग के समान बनाये रखती है, वे आप सुखी होती हैं और अपने पति तथा अपने कुटुम्ब के जीवन को सुखी बना सकती हैं।

सद्गृहस्थ को ऐसे नगर या स्थान में रहना चाहिये जहां जिनमंदिर, शास्त्र भण्डार, वाचनालय, पाठशाला, औषधालय आदि हों, सज्जन धर्मात्मा पुरुषों की सत्संगति प्राप्त हो, जहां धर्मवृद्धि तथा अपने कुटुम्ब का अच्छी तरह निर्वाह करने के लिये आवश्यक धन कमाने के साधन भी हों। गृहस्थ का रहने सहने का मकान भी ऐसा होना चाहिये जिसमें हर ऋतु में अच्छी तरह आराम के साथ रह सकें। जो हवादार, साफ हो, जिसमें रोशनी भी आती हो। जिसमें धर्मध्यान, स्वाध्याय सामायिक आदि सुभीते के साथ की जा सकें, इनके करने में कोई बाधा आने न पावे।

मकान में बदबू न आवे, मकान की मोरियां, नालियां और टट्टी आदि सब धुली धुलाई और साफ होनी चाहियें।

सद्गृहस्थ को लज्जावान होना चाहिये उसे उद्धतता का व्यवहार नहीं करना चाहिये। अपने ऐश्वर्य, उम्र, देश, काल और कुल के अनुसार ही वस्त्राभूषण आदि पहनने चाहियें, निर्लज्ज होकर कोई ऐसे निंद्य कार्य नहीं करने चाहियें जिससे उसकी जाति, धर्म, कुल और देश की प्रतिष्ठा भंग होती हो तथा

गौरव नष्ट होवे। वह कोई ऐसा लेन देन विवाह शादी में नहीं करता जो उद्दतता से भरा हो और जो दूसरों के लिये एक दुख देने वाला रिवाज बन जावे।

सद्गृहस्थ सदा योग्य आहार विहार किया करता है। निर्दोष आहार करता है, रात्रि को भोजन नहीं करता छना हुआ जल काम में लाता है, अभक्ष्य भक्षण का त्यागी होता है। मांस, मदिरा, मधु आदि का सेवन नहीं करता। श्रद्धान को मलिन करने वाली तथा चारित्र को भ्रष्ट करने वाली सभा सोसायटी में नहीं जाता। वह अपना प्रत्येक कार्य समय पर करता है—वह कहीं ऐसे स्थान पर जाना पसंद नहीं करता जहां उसके धर्म साधन में रुकावट पड़ती है, वह धर्म को मुख्य समझता है, अन्य सब बातों को गौण।

सद्गृहस्थ सदा आर्य संगति में ही रहना पसंद करता है, सदाचारी सज्जन धर्मात्मा पुरुषों की संगति में ही वह रहता है। जुआरी, धूर्त, व्यभिचारी, निर्लज्ज, दुष्ट व्यसनी पुरुषों की संगति से सदा बचना चाहिये। सत्संगति से ज्ञान और आचरण की वृद्धि होती है और कुसंगति से अपनी बुद्धि मलिन होती है और हानि होती है।

सद्गृहस्थ दीर्घ दर्शी होता है। विचारवान और विवेकशील होता है, आगे दूर तक की बात को सोचता है। प्रत्येक काम को उसके अच्छे बुरे नतीजे को विचार कर करता है।

सद्गृहस्थ दूसरे के किये हुवे उपकार को भूलता नहीं, कृतघ्न नहीं होता अपने उपकारी का भला चिन्तवन करता है। सद्गृहस्थ संयमी होता है। उसे अपनी इन्द्रियों पर काबू होता है, उसके कषाय मंद होते हैं वह आप कष्ट उठालेवेगा, परन्तु दूसरों को दुख देकर राजी नहीं होता, दूसरों का तो भला ही चाहता है।

सद्गृहस्थ की धर्म में अटल श्रद्धा होती है, वह धर्म को विसारता नहीं। शास्त्र सुनता है पढता है औरों को सुनाता है। धर्मप्रभावना के कारणों के जुटाने में तत्पर रहता है। स्वयं धर्म साधन करता है, अपनी बुद्धि को निर्मल रखता है, दूसरों को धर्म साधन के लिये प्रेरणा करता है। वह दयालु होता है, दीन दुखी जीवों को देख उन पर करुणा करता है, करुणा बुद्धि से दान देता है, दया धर्म का मूल है, जिसके हृदय में दया नहीं वह मनुष्य नहीं। अपने शत्रु पर भी दया करना ही श्रेष्ठ है।

सद्गृहस्थ सदा पाप से डरता है, वह सप्त व्यसन का सेवन नहीं करता। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पांच पापों से डरता रहता है, विषय कषाय को अपने लिये हानिकारक जान उनका त्याग करता है, वह समझता है कि धर्म रूपी धन के चुराने वाले लुटेरे चोर हैं, जिस प्रकार भी बने इनसे अपने धर्म धन की रक्षा करनी ही योग्य है। सद्गृहस्थ निर्भय, बलवान चारित्रवान श्रद्धालु और ज्ञानवान होता है, अपने गृह कार्य में कुशल,उदार, सहनशील और विवेकी तथा परोपकारी होता है।

मैत्री, प्रमोद, माध्यस्थ और करुणा भावना के भाने वाला होता है। आपत्ति आने पर दरिद्र आजाने पर, रोग होजाने पर वह कायर नहीं होता, कर्मों का फल समय रह सब दुख कष्टों को वीरता के साथ सहप सहन करता है।

पाठ—

मगल कामना

॥ स्रग्धरा छन्द ॥

होवे सारी प्रजा को सुख, बलयुत हो धर्मधारी नरेशा।
होवे वर्षा समय पै, तिल भर न रहे व्याधियों का अदेशा॥
होवे चोरी न जारी, सुसमय वरतै हो न दुष्काल मारी।
सारे ही देश धारैं, जिनवर वृष को जो सदा सौख्यकारी॥

दोहा—घाति कर्म जिन नाश कर, पायो केवल राज।
शान्ति करें सो जगत में, वृषभादिक जिनराज॥

मन्दा क्रान्ता

शास्त्रों का हो पठन सुखदा, लाभ सत्संगती का।
सद्वृतों के सुगुण कहके, दोष ढाकू सभी का॥
बोलू प्यारे वचन हितके, आपको रूप ध्याऊँ।
तौलों सेऊ चरन जिनके, मोक्ष जौलों न पाऊ॥

प्रश्नावलि

१-इस पाठ में जगत के कल्याण के लिये क्या भावनायें बनाई हैं ?
२-निज हित के लिये हमें क्या करना चाहिये किन २ बातों को ग्रहण करना चाहिये ?
३-दोनों छन्दों का अर्थ जुदा २ अपने सरल शब्दों में समझाओ।

ज्ञान वृद्धि के लिये अमूल्य भेंट

पाठ्यक्रम पुस्तकें

शिक्षावली प्रथम भाग ।)
,, द्वितीय भाग ।-)
,, तृतीय भाग ।=)
,, चतुर्थ भाग ।।)
बोध जैनधर्म प्रथमभाग -)।।
,, द्वितीय भाग =)
,, तृतीय भाग ≡)।।
ढाला साथ ।।)
संग्रह साथ ।।)
करण्ड श्रावकाचार साथ ।।)
ध माला १)
शास्त्र सटीक २)
शास्त्र मूल -)।।
धर्म प्रकाश ।।)
धर्म सिद्धान्त ।-)
सिद्धान्त प्रवेशिका ।≡)
ार्थ सिद्धोपाय १)
पाठावली ।।।=)
ी शिक्षादेश ।=)

तत्वार्थ सूत्र भक्तामर ।)
जैन तीर्थ और उनकी यात्रा ।।।)
सुशीला उपन्यास २)
पतितोद्धारक जैनधर्म १।)

पूजन पाठ विषयक

नित्य नियम पूजा ।)
आलोचना पाठ -)।।
निर्वाण काण्ड -)
आलोचना पाठ -)
पंच कल्याणक साथ ।)
तेरह द्वीप का नकशा -)।।
सिद्ध क्षेत्र पूजा २।।)
सोलह कारण दीपक ।।।)
समवशरण विधान १)
भाषा पूजा संग्रह १)

मर्नोपयोगी साहित्य

आत्मिक मनोविज्ञान ।।)
अष्ट पाहुड हिन्दी टीका १।।)
कथा कहानी और संस्मरण १)